# तृतीय अध्याय

# स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में चित्रित ग्राम जीवन

## तृतीय अध्याय

## स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में चित्रित ग्राम-जीवन

(रतिनाथ की चाची, बलचनमा, गंगा मैया, बाबा बटेसरनाथ, मैला आँचल के संदर्भ में)

अ) सांस्कृतिक पृष्ठभूमि :-
1) लोक गीत
2) लोक कथा
3) तिज-त्यौहार-उत्सव-पर्व ।
4) रूढ़ि प्रथा एवं परंपरा
5) विवाह संस्कार
6) मृतक संस्कार
7) मनोरंजन के साधन
8) निष्कर्ष

आ) सामाजिक पृष्ठभूमि :-
1) अंधविश्वास, भूत-प्रेत, चुडैल, साड-फूँक संबंधी
2) देवी-दैवताएँ
3) बलिप्रथा
4) आर्थिक स्थिति एवं व्यवसाय
5) शैक्षिक स्थिति
6) राजनीहितक संदर्भ एवं सुधार योजनाएँ ।
7) खान-पान एवं रहन-सहन
8) जातीय एवं गोत्रगत भेदाभेद
9) जातिपंचायत
10) समूह भावना
11) शोषण
12) नारी की स्थिति
13) निष्कर्ष

## तृतीय अध्याय

## स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में चित्रित ग्राम–जीवन

(रतिनाथ की चाची, बलचनमा, गंगा मैया, बाबा बटेसरनाथ, मैला आँचल)

साहित्यकार और समाज का अन्योन्याश्रितसंबंध रहा है। साहित्यकार समाज का एक अंग एवं घटक रहा है। वह समाज में रहता है, जीता है और अंत में वहाँ से ही चला जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि उसका आदि से अंत तक समाज से संबंध रहता है। परिणामतः उसकी कृतियों में समाज जीवन का ही चित्रण होता है। इसलिए कहा जाता है कि 'साहित्य समाज जीवन का दर्पण' है। साहित्य में नगर, ग्राम का चित्रण मिलता है। समाज की सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक स्थिति का लेखा–जोखा उपन्यास में रहता है। हिन्दी उपन्यासकार भी इसके लिए अपवाद नहीं है। उपन्यासों को 'जीवन का महाकाव्य', जीवन का चित्र भी कहा गया है। प्रस्तुत अध्याय में मैंने हिन्दी के कुछ उपन्यास कृतियों को चुना है जो प्रतिकात्मक है, जिसमें नागार्जुन के रतिनाथ की चाची (1948), बलचनामा (1952), बाबा बटेसरनाथ (1954), भैरवप्रसाद गुप्त का 'गंगा मैया' (1953), रेणु का 'मैला आँचल' (1954) आदि है। ये उपन्यास ग्राम जीवन से जुडे है। ग्रामीण जन जीवन की झाँकी उसमें दिखाई देती है।

ग्राम का प्राकृतिक सौंदर्य, अबोहवा, अंधविश्वास, अज्ञान, अशिक्षा, धर्म संबंधी मान्यता, विविध रूप में होनेवाला शोषण, सामाजिक, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, नए–नए प्रवाह, मूल्य–मान्यता, चेतना, संघर्ष की भावना, विकासयोजना आदि कई बातों का चित्रण उपन्यासों में हो चुका हैं। इस दृष्टि से ये उपन्यास भारतीय ग्राम–जीवन की तसबीर लगते है। ये उपन्यासकार ग्रामजीवन से जुड़े होने के कारण ग्रामजीवन की वास्तविकता, यथार्थता, भयावहता उन्होंने देखी है। उनके पास अनुभूति का अक्षय कोष है, जिसके कारण उनकी कृतियाँ जनजीवन की सफल रचनाएँ बनी है। इन रचनाओं के सहारे यह स्पष्ट करने का प्रयास किया

गया है कि, भारतीय जनजीवन को हिन्दी उपन्यासकारों ने गहराई के साथ चित्रित किया है। ग्राम जीवन की अनेक झाँकियाँ चित्रित करके ग्रामजीवन को, ग्रामवाणी को शब्दाकार मे व्यक्त करने का सफल प्रयास किया है। नागरी जीवन की अपेक्षा आज भी भारतीय ग्रामजीवन में अपनी प्राचीन सांस्कृतिक धरोहर सुरक्षित रही है, उसकी रक्षा हो रही है। ऐसा भी यहाँ लगता है। इसके लिए ये उपन्यास एक साधन बने है। इसलिए यह कहा जाता है कि किसी भी जनजीवन को देखना हो तो उसके संबंधित साहित्यिक रचनाओं को देखना, पढ़ना ही चाहिए। प्रस्तुत अध्याय में जिन उपन्यासकारों को चुना है जिन रचनाओं को चुना है वे सभी वास्तव में ग्रामजीवन के ही प्रतिनिधि है। उनपर यहाँ विस्तार से सोचा है।

रतिनाथ की चाची :- – नागार्जुन

नागार्जुन का 'रतिनाथ की चाची' (1948) उपन्यास मिथिला भूमि के जनजीवन की कथा चित्रित करता है। उस उपन्यास के केंद्र में 'रतिनाथ की चाची' गौरी का निजी व्यक्तित्व है। लेखक ने विधवा ब्राह्मणी के करुण–विगलित जीवन का आँसूओं से भीगा चित्र उपस्थित किया है। नागार्जुन का यह पहला आँचलिक उपन्यास है। हिन्दी में आँचलिक उपन्यासों की परंपरा का सुदृढ और स्वस्थ रुप नागार्जुन के उपन्यासों से ही प्रारंभ होता है। डा.गणपतिचन्द्र गुप्त के शब्दों में – "आँचलिक संज्ञा का आविष्कार फणीश्वरनाथ रेणु व्दारा उनके 'मैला आँचल' (1954) की भूमिका में हुआ किन्तु इस परंपरा का सूत्रपात इससे पूर्व ही नागार्जुन के उपन्यासों व्दारा हो चुका था।"[1] तो शंभूसिंह का कथन है – "नागार्जुन का प्रथम उपन्यास 'रतिनाथ की चाची' हिन्दी का प्रथम आँचलिक उपन्यास है और नागार्जुन हिन्दी के प्रथम आँचलिक उपन्यासकार हैं।"[2] रतिनाथ की चाची उपन्यास का वर्ण्य उद्‌देश्य हमारे समाज में प्रताड़ित विधवाओं की स्थिति का चित्रण करना है।

मिथिला में स्थित शुभंकरपुर और तरकुलवा गाँव के जन–जीवन की झाँकी यहाँ प्रस्तुत करते हुए समाज में विधवा नारी की स्थिति, उसपर होनेवाले शारीरिक मानसिक अत्याचारों का

सजीव चित्र हमारे सामने उपस्थित हो जाता है। शुभंकरपुर की कुल उपजाऊ जमीन का अधिकृत भूभाग तीन सौ बीघा है। ढाई सौ बीघा धान के खेत है। पचास बीघा रबी और भदई के है। इसके अलावा आमों के बाग, बाँसों के जंगल, तालाब, गोचर आदि के लिए पचास बीघा है। ढाई सौ परिवारों की आबादी, खानेवाले मुँह ग्यारह सौ। इनमें गरीब ही अधिक है। यह गरीब भी दो श्रेणी में बँटे हुए है। एक ब्राह्मण और दूसरा गैर–ब्राह्मण। पढ़े–लिखे लोग शहरों में फैले हैं। ब्राह्मणें में विद्या का प्रसार खूब था। ब्राह्मणें के सौ परिवारों में से पंद्रह परिवार ऐसे होंगे, जो महादरिद्रों में विभाजित होते थे। बाकी के लोग खेती के अभाव में भी भर पेट खाने वालों में से थे।

तरकुलवा गाँव में भी दुसाध, मुसहर, डोम, धुनिया, जुलाहा, ब्राह्मण, राजपुत, बनिया, ग्वाला जैसे विविध जाति के लोग निवास करते है। यह गांव सड़क के किनारे बसा हुआ है। यहाँ आठ–दस पोखर है। पोखर में मछलियाँ पकडना गाँववालों का शौक है। यहाँ के लोगों का जीवन मुख्यत: खेती पर निर्भर है। खेती पध्दति में आधुनिकता का अभाव है। प्राचीन परंपरा के अनुसार हल चलाना, बीज बोना, फसल काटना यही उनकी पध्दति है। फुरसत के समय में यहाँ की स्त्रियाँ तकली पर सूत कातने का काम करती है। यही उनके जीविका का साधन भी है। यहाँ स्पष्ट है ग्राम का जीवन कृषिप्रधन है, जो कृषि पुरानी तथा अप्रगत पध्दति से की जा रही है। आज भी नए–नए तंत्रज्ञान का अभावलक्षित होता है। जातीय भिन्नता की विशेषता यहाँ अधिक मात्रा में रही है। उपन्यासकार ने इसका भी सही चित्रण किया है – ऐसा लगता है।

गाँव में विवाह की बडी अनूठी प्रथा है। ब्राह्मण समाज में विवाह करनेवालें लोग 'सौराठ' प्रथा का निर्वाह करते है; जिसमें लोग इकठ्ठे होते है, बहुत कम समय में सरलता से विवाह संबंध निश्चित हो जाते हैं। चाची का बेटा उमानाथ का विवाह केवल दो घंटे में तय हुआ क्योंकि "सौराठ में यही तो होता है, हजारों विवाहार्थी इकठ्ठे होते है। कन्याओं की तरफ से उनके अभिभाघक बडी तादाद में जमा रहते हैं। "अपनी मौजूदा स्थिति में भी ब्राह्मणों

का यह वैवाहिक मेला अनुपम है।"[3] यहाँ विवाह की यह अनोखी, अनूठी प्रथा रही है, जिसमें वे अपनी विरासत की रक्षा करते है। सौराठ का जिस तरह लाभ है उसी प्रकार उसकी हानि भी है। सौराठ के बाजार में विवाह की सुविधा उपलब्ध होने के कारण मिथिला के ब्राह्मण समाज में बहुपत्नी विवाह प्रथा प्रचलित है। रतिनाथ के नाना की दस विमाताएँ थी। जयनाथ के परदादा ने इक्कसी शादियाँ की थी। तिब्बत में जैसे बहुपति–प्रथा अभी तक जीवित हैं उसी तरह रतिनाथ की मिथिला में बहुपत्नी प्रथा रही है। सौराठ इन लोगों का बडा बाजार है। बहुपत्नी प्रथा नारी शोषण का एक आयाम है। नारी का बाजार एवं बिकाऊ वस्तु के रुप में नारी का प्रयोग होता है। इससे भी अनेक कुप्रथाएँ बनी है। उपन्यास में उसका यथार्थ रुप में चित्रण दिखाई देता है। अनमेल विवाह इसी का नतीजा है। बहुपत्नी प्रथा सें ही अनमेल विवाह की शुरूआत हो गई। अनमेल विवाह की शिकार केवल चाची ही नहीं थी तो असंख्य युवतियाँ हो चुकी है। असमय मृत्यु इस अनमेल विवाह का एक दुष्परिणाम ही है। शुभंकरपुर के भोला पंडित अनमेल विवाह कराने में महारत हासिल किए हुए हैं। उमानाथ की बहन प्रतिभामा को इन्होंने पैतालिस साल के एक महामुर्ख के चंगुल में डाल दिया। इसपर प्रकाश डालते हुए उपन्यासकार लिखता है – "इसीतरह पचीसों लडकियाँ आपका नाम लेकर दच्छिन–पच्छिम में करम कूट रही थी।"[4] यह कथन नारी की दयनियता, अपमानीत, लांछित जीवन को स्पष्ट करने में सक्षम लगता है।

मिथिला जनपद में किशोरी युवतियों को किसप्रकार कुलीनता बनाम अभिजात्य के नाम पर बलि–वेदी पर चढाया जाता था, इस ओर भी नागार्जुन की दृष्टि गई है। कुलीनता के मोह का आग्रह बालिकाओं को रूग्न और वृध्द व्यक्तियों के पल्ले बाँधने को बाध्य कर देते थे। कभी – कभी इस कुलीनता के बदले में रूपये प्राप्त कर लडकी बेचने का दुष्प्रयत्न भी निहित रहता था।[5] बहुपत्नी–प्रथा का ही एक रुप 'बिकौआ–प्रथा' भी मिथिला ब्राह्मण समाज में प्रचलित है। बिकौआ अत्यंत निर्धन कुलीन ब्राह्मण होते हैं, जो अपनी कुलीनता बेच–बेचकर अनेक विवाह कर अपना संपूर्ण जीवन ससुरालों में काटते हैं। ससुराल ही इनकी जीविका का

साधन है। लोग इन ब्राह्मणों को आदरपूर्वक आमंत्रित कर इनसे अपनी कन्या का पाणीग्रहण करवाते है। एक–एका बिकौआ बाईस बाईस शादियाँ करते थे। "इन्द्रमणि को भी अपनी तीन कन्याओं का भरण–पोषण आजन्म करना पडा, क्योंकि चार में से तीन दामाद परम अभिजात और महादरिद्र थे।"[6] . यहाँ स्पष्ट है गरीबी के शिकार सिर्फ नारी ही नहीं बल्कि निर्धन पुरूष भी है। बिकौआ–प्रथा, पुरूष शोषण का एक हीन रुप है। पेट की आग बुझाने के लिए मनुष्य क्या नहीं करता ? इस प्रश्न का यहाँ उत्तर मिलता है। नागार्जुन ने एक शोषण का नया आयाम सामने रखा है। शुभंकरपूर और तरकुलवा में कई प्रथाएँ रही है। जैसे, स्त्रियों व्दारा पर्दा रखना, बहु का मुँह दिखाना, श्राध्द पर कम से कम पाँच वर्षो तक ग्यारह व्यक्तियों को भोजन देना । काशी में बहुविवाह प्रथा के साथ–साथ रखेलियों को रखना आदि प्रथाएँ प्रचलित है। काशी में विधवा आश्रम चलानेवाले धनी सज्जन की तीन विवाहिताएँ और पाँच रखेलियाँ होते हुए भी विधवा की ओर ललचाई निगाह से देखा करता है। साथ–ही–साथ यहाँ मुंड़न छेदन की भी प्रथा है अर्थात शिशु के बालों को जब पहली बार किसी तीर्थ में, या देवी–देवता के स्थान में कटवाते हैं, तो उसे 'मुंडन–संस्कार' कहा जाता है। महाराष्ट्र के भी कई ग्रामों में ऐसी प्रथा दिखाई देती है।

भारतीय ग्राम जीवन में धर्म का काफी प्रभाव है। ग्रामवासी जी–जान से धर्म और धार्मिक मान्यताओं का निर्वाह करते है। धनवानों के लिए धर्म यश, कीर्ति का साधन तो पंडितों को धन कमाने का माध्यम है। महाजन, जमींदार अपनी अवैध रूप से जमा पूँजी को धर्म के नामपर बाँटते है। और धर्मात्मा होने का स्वाँग रचाते है। शुभंकरपुर के जमींदार रायबहादुर दुर्गानंदनसिंह सौ रूपये के लिए प्रतिमास डेढ़ रुपया व्याज लेते है। उन्होंने धर्म के नामपर माँ के श्राध्द में समूचे भारत के महामहोपाध्याय उपाधि से विभूषित पंडितों को बुलवाना था। प्रत्येक पंडित का आने–जाने का खर्चा और उपर से एक सौ एक की बिदाई देना। बाहर के इन पंडितों व्दारा इन्हें 'धर्म – दिवाकर' की उपाधि प्रदान करना आदि घटनाएँ धर्म का विकृत रुप ही स्पष्ट करती है। धन और धर्म का घिनौना संबंध शोषण का रूप लगता है।

धनवानों के लिए धर्म यश कीर्ति का रूप है तो निर्बल और हीन लोगों के लिए धर्म अन्याय, अत्याचार का प्रतीक है। वे विवश होकर जीवन जीते है। इस बारें में नागार्जुन लिखते है – "समाज उन्ही को दबाता है, जो गरीब होते है। शास्त्रकारों को बलि के लिए बकरे ही नजर आये। बाघ और भालू का बलिदान किसी को नहीं सूझा।"[7] गरीबों के लिए बलि के बकरे की उपमा यथार्थ लगती है। रतिनाथ के पिता जयनाथ अपने ब्राह्मण धर्म के अनुसार प्रात:स्मरण, संध्या तर्पण, पंचदेवता पूजन, सप्तशती आदि सब श्रध्दा से करते है। इसके अतिरिक्त विद्यापति की महेशवानी भी बडी तन्मयता से पढते है। अपने भगवान शालिग्राम की बडी श्रध्दा से पूजा करना, काशी की यात्रा करना आदि भक्ति के विविध आयाम वे अपनाते है। यहाँ स्पष्ट है कि धर्म का पालन करके अपने आराध्य की पूजा, उपासना करके उसे प्रसन्न करना ग्रामवासियों की एक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति है। जयनाथ, शुभंकरपूर और तरकुलवा के निवासी इस बात के प्रतीक है। शुभंकरपूर और तरकुलवा गाँव में लोगों की यह श्रध्दा थी कि अगर किसी से बडा पाप हो जाए, ब्रह्महत्या हो जाए, अवैध मातृत्व मिले तो उसे प्रायश्चित के लिए सिमरिया घाट जाना चाहिए। धर्म के अनुसार ब्राह्मण का हल जोतना, गाडी चलाना, गाडी पर चढना भी मना है। गौरी की माँ का मंगल को उपवास रखना, गौरी के गर्भ गिराने के ठीक ग्यारहवें दिन सत्यनारायण की पूजा करना, पूजा के अवसर पर गौरी व्दारा स्वच्छ सफेद शांतिपुरी धोती पहनना, पंद्रह ब्राह्मणों को खाना खिलाना आदि जब धार्मिकता के ही उदाहरण दिखाई देते है। इसप्रकार धार्मिकता के विभिन्न रुप यहाँ उपन्यासकार ने स्पष्ट किए हैं, जिसमें ग्रामजीवन स्पष्ट होता है।

शुभंकरपुर गाँव में कई अंधविश्वास प्रचलित है, जो ग्रामवासियों के जीवन का एक अभिन्न अंग बन चुके है। जयनाथ का ताराबाबा पर विश्वास रखना, ताराबाबा के कहने पर गर्भ गिराने का यंत्र तैयार करना आदि अंधविश्वास है। ताराबाबा की किवदन्तियों पर वहाँ के लोग पूर्णत: विश्वास करते है; जैसे, बाबा के घर चोरी करने के लिए आया हुआ चोर सुबह तक वही अटका रहा तथा ताराबाबा ने मरी गाय को फिर से जीवित किया आदि किवदन्तियाँ

उनके बारें में प्रचलित हो गई है। ताराबाबा का प्रसाद भगवान का प्रसाद समझकर भाँग को पीना हररोज बाबा का प्रसाद मानकर जयनाथ भांग पीता है। जिसकी उसे आदत पड़ती हैं। केवल बडे लोगों में ही यह अंधविश्वास प्रचलित था ऐसी बात नहीं तो छोटे–छोटे बच्चों पर भी उसका असर पड चुका था। रतिनाथ को किताबें न मिलने से वह कुछ किताबें चुराता है और उस चोरी को सब सहपाठियों से छिपाता है। जब लडके कहते है कि परसौनी जाकर हम उस चोरी करनेवाले पर जूगल कामति से कटोरा चलायेंगे तब रतिनाथ पूरी तरह घबरा जाता है और दूसरे ही दिन वह उसी जगह किताबें रख देता है। इससे यही स्पष्ट होता है कि बडे लोगों का प्रभाव छोटे–छोटे बच्चों पर भी पडता है। बुरे कर्म करनेवाला भी अंधविश्वास के डर से सीधे पथ पर आ सकता है, चोरी करनेवाला रत्ती इसका उदाहरण है। जयनाथ खुद रती कोएक बार बताता है कि विद्या का आरंभ बृहस्पतिवार को करना अच्छा होता है। यह भी एक अंधविश्वास ही है।

ग्राम जन–जीवन अज्ञानी होने के साथ–ही–साथ यहाँ जाति के बंधन भी कड़े होते है। शुभंकरपुर और तरकुलवा में अनेक जाति के लोग रहते है। परंपरा के अनुसार वे अपना–अपना काम करते हैं। चाची के अवैध मातृत्व के कारण दम्मो फूफी जो सारी नारियों की प्रमुख है, वह चाची के घर को समाज से बहिष्कृत करती है। तब धोबिन, नाईन, डोमिन, चमाइन, खबास आदि सारी जाति की स्त्रियाँ जो घर का काम करती है वह भी आना बंद कर देती है। यहाँ स्पष्ट है जातीयता के प्रभाव से नारी भी दूर नहीं। उनपर जातीयता का प्रभाव होने के कारण चाची को बहिष्कृत किया जाता है। गांव की रचना में भी जातीयता के दर्शन होते है। इसका वर्णन करते हुए उपन्यासकार लिखता है – "ब्राह्मण, राजपूत, बनिया, ग्वाला वगैरह गाँव के एक ओर थे। मुसलमान दुसरी ओर। छोटी जाति वाले उसके बाद – सड़क के किनारे लम्बाई में बसा था गाँव।"[8] गौरी की माँ गर्भ गिराने के लिए चमाईन को बुलाती है। निम्न जातिवालों को ऊँची जातिवालों का झूठन खाना पडता है और वे खुशी से खाते भी है। इसप्रकार गाँव में स्थित जातीयता का चित्रण उपन्यास में हुआ है। आज भी इसके दर्शन होते है।

गाँव में उत्सव–पर्व भी बडे धूमधाम से मनाए जाते है। आश्विन के महीने में बडी धूम–धाम से दशमुखी दुर्गा–पूजा का पर्व मनाया जाता है। शुभंकरपूर से उत्तर में नजदीक ही परसौनी गाँव है। वहाँ के वंशी मंडल प्रतिमाएँ बनाने में बहुत कुशल थे। अब लोग कुछ इसके बारे में उदासीन दिखाई देते है लेकिन पचास साल पहले आश्विन में दुर्गा की, कार्तिक में काली, चित्रगुप्त और कार्तिकेय की, माघ में सरस्वती की, चैत में राम, लक्ष्मण, सीता तथा उनके स्वजन – परिजन, अनुचर – परिचर की आदि कुल मिलाकर तेरह प्रकार की मूर्तियाँ बनाई जाती थी। मुशहढ़ आदि जाति की देवता को सल्हेशः दुसाध कहा जाता। (जिसमें पीपल पाकड़ बरगद के नीचे कुटीरों में अश्वारोही सामान्त भेष–भूषा में इन्हें आसानी से पहचाना जा सकता है।) इनकी पूजा उत्सव के रूप में मानी जाती है। लोग आते हैं, आव–भगत होती है। इसके साथ–ही–साथ गाँव में रक्षाबंधन, विजयादशमी भी बडे उत्साह के साथ मनाए जाते है। माघ में प्रतिवर्ष वसन्तपंचमी के दिन सरस्वती की नई प्रतिमा की स्थापना की जाती और साल भर वह प्रतिमा ज्यों की त्यों रहती थी। यहाँ भाई – दूज के त्यौहार की तिथि बडी महत्वपूर्ण है। दिवाली के बाद आनेवाली कार्तिक शुक्ल व्दितीया को जिनकी बहन जीवित हो तथा जिनकी शादी हो गई हो उसके घर पर जाकर भाई इस त्यौहार को मनाते है। भाई दूज के समान महाराष्ट्र में 'भाऊबीज' उत्सव मनाया जाता है। उमानाथ के लिए तो यह भाई–दूज एक उत्सव के समान लगता है। विजयादशमी के दिन बेतिया में बहुत भारी मेला लगता है। इसमें गाय, बैल और घोडे खूब बिकते है। यहाँ स्पष्ट है उनके उत्सव, उल्लास, उमंग के रहे हैं। सभी गाववाले उसमें शरीक होते है, वे एकता के प्रतीक है।

नारी शोषण सदियों से हो रहा है। नारी का निम्न स्थान हर जगह दिखाई देता है। "पुरूष ने नारी का अत्यन्त शोषण किया है। विधवा हो जाने पर नारी को इस अधिकार से वंचित रखा गया की वह दूसरा ब्याह कर सके, जबकि पुरूष के लिये कोई बन्धन न था। इसे शास्त्रों व्दार प्रमाणित करके पुरूष यगु–युगों से उसे प्रवंचित करता आ रहा है। विधवा–प्रथा के कारण ही अनेक सामाजिक समस्याओं का जन्म होता है।"[9] गाँव भी इससे प्रभावित है। नारी में भी विधवा नारी की स्थिति अत्यंत भयावह दिखाई देती है। पति की

मृत्यु होने पर समान उसे नोंच डालता है। चाची का जीवन इसका उदाहरण है। चाची अनमेल विवाह की शिकार बनी हुई नारी है। पति दमे के रोगी होने के कारण जल्दी मृत्यु हुई। चाची अर्थात गौरी तरकुलवा की सुंदर लडकी थी। बैद्यनाथ झा के कुलीनता को देखकर शुभंकरपुर में उसकी शादी की गई थी। परिणामत: वह जल्दी ही विधवा हो गई। चाची को एक लड़का उमानाथ और लडकी प्रतिभामा थी। प्रतिभामा का विवाह एक पैंतालिस साल के व्यक्ति सेकिया गया अर्थात वह भी वैधव्य की शिकार हो गई। गौरी का वैधव्य दरिद्र कुल में लडकी ब्याहने का ही दुष्परिणाम था। जयनाथ चाची का देवर है, उसकी पत्नी याने रतिनाथ की माँ गुजर चुकी है। जटानाथ अपनी पत्नी की बेहरमी से पीटाई करता है। रतिनाथ को जब माँ की याद आती है, तब उसका शोषित रूप ही उसे नजर आता है। उस शोषित माँ को देखकर रतिनाथ दु:खी तो है ही लेकिन पिता के प्रति भी उसमें नफरत का भाव बढता है। तरुण देवर जयनाथ अपनी रुग्न कामवासना का शिकार गौरी को बनाता है, और वह गर्भ धारण कर लेती है। यहाँ से उसके असहाय, अपमानित और प्रताड़ित जीवन की करूण कथा यात्रा शुरू होती है। गौरी विधवा है, अकिंचन है, गर्भ रहने के कारण अब वह कहीं मुँह दिखाने के काबिल नही रहती। बालविधवा दमयंती गेरी की असहाय अवस्था का केवल उपहास ही नहीं करती वरन् उसके सामाजिक बहिष्कार का उपक्रम करती है। वह कहती है – "उमानाथ की माँ व्यभिचारिणी है, पतिता है, भ्रष्टा है, कुलटा है, छिनाल है, उससे हमें किसीप्रकार संबंध नहीं रखना चाहिए। बोल–चाल बन्द। .... उमानाथ की माँ को समाज किसी भी हालत में क्षमा नहीं कर सकता।"[10] बाबूराम गुप्त का कथन है – "रतिनाथ की चाची उपन्यास में वर्णित भाभी–देवर संबंध हिन्दी उपन्यास साहित्य की अमर निधि है। गौरी जैसी भाभी पाठकों की जिस व्यापक संवेदना को जाग्रत करने में सफल हुई है, वह हिन्दी साहित्य में बहुत कम नारी–पात्र करने में सक्षम रहे है। विधवा गौरी अपने देवर जयनाथ की कामातुरता का शिकार हो विभिन्न स्तरों पर असहाय्य मानसिक पीड़ा सहन करती हुई भी जयनाथ और उसके पुत्र रतिनाथ के प्रति अपने कर्तव्य पालन में चूक नहीं करती।"[11] विपत्ति

के ऐसे क्षण में जयनाथ गौरी को छोडकर काशी चला जाता है। उसे सारी पुरूष जाति से घृणा उत्पन्न होती है। अनपढ़ होने के कारण उसे खत लिखकर बुला भी नहीं सकती। आखिर उसे माँ की याद आती है। वह माँ के पास तटकुलवा चली जाती है। बुधना चमाइन को बुलाकर वह गर्भ गिराने में सफल होती है। "गौरी की माँ समाज के लिए बाघिन थी। इतना बडा 'कुकांड' हो जाने पर भी तरकुलवा में किसी ने गौरी की माँ को खुल्लम खुल्ला कुछ कहा नहीं।"[12] यह कथन साहसी नारी को स्पष्ट करता है। यहाँ उपन्यासकार ने नारी शोषण के विविध आयाम दिखाए है। पतिव्दारा शोषित, परित्यक्त्या अनपढ़, अवैध मातृत्व, विधवापन आदि रूप में नारी का शोषण हो रहा है। मगर उसके खिलाफ अभी तक चेतना एवं विद्रोह की लहर का निर्माण नहीं हुआ, मगर गौरी की माँ इसके लिए अपवाद लगती है। गौरी का भाई जयकिशोर वापस आने से पहले ही गौरी शुभंकरपुर लौटती हैं।

शुभंकरपूर में आने के बाद गाँव में सिर्फ उसकी ही चर्चा शुरू होती है। दमयंती के सामाजिक बहिष्कार के कारण उससे सभी नाता तोड़ लेते है। चाची रतिनाथ से बहुत स्नेह करती थी। बचपन से ही वह उसे दुलार देती आई थी। इसलिए रतिनाथ के मन में केवल चाची के लिए ही स्नेह है। बैद्यनाथ झा की वर्षी पर चाची का बेटा उमानाथ आता है, तब दमयंती उसको गौरी के बारे में सबकुछ बताकर उसको भड़काती है। उमानाथ चाची को बहुत पीटता है। अपने विवाह के लिए रूपये इकठ्ठा करने में जुट जाता हैं। उमानाथ का विवाह कमलमुखी से होता है। लेकिन वह अपनी माँ को कभी भी माफ नहीं करता बल्कि घुटन, अपमान की जिंदगी जीने के लिए छोड देता है। कमलमुखी का व्यवहार बाहर की औरतों के लिए अच्छा है लेकिन चाची के लिए उसके दिल में नफरत ही नफरत है। वह अंत तक चाची को समझ नहीं पाती। तब चाची के मन में आत्महत्या के विचार आते हैं लेकिन समाज क्या कहेगा? इस डर से आत्महत्या भी नहीं कर पाती। अकेली ही तकली पर सूत निकालने का काम रात–दिन करती है। गाँव उसके कलंक को भूल जाता है। लेकिन घर के वातावरण से चाची ऊब जाती है। अचानक गाँव में हैजा की बीमारी फैलती है। चाची पहले सेही कृश हुई

थी। बीमारी ने उसे और भी कमजोर किया। रतिनाथ उसके लिए दवा लेकर आया लेकिन चाची ने दवा लेने से इन्कार कर दिया जैसे ; उसे मौत का बुलावा ही आया था, उसे ठुकराना नहीं चाहती थी। अपनी अंतिम इच्छा रतिनाथ को बताती है कि मेरी चिता को केवल तुम आग लगाना। सगा बेटा होते हुए भी उमानाथ उसे कभी भी समझ नहीं सका। आखिर चाची बीमारी में ही चल बसती है। इसीतरह चाची का जीवन अंततक पीड़ादायक बना रहा। उसेन समाज ने जाना, न ही अपने बेटे ने माना। एक विधवा की स्थिति, उसकी जिन्दगी कितनी दर्दभरी होती है? इसका सबसे अच्छा चित्र यहाँ अंकित होता है। "उपन्यासकार नागार्जुन ने 'रतिनाथ की चाची' में गौरी के माध्यम से जो विधवा का करूणमय चित्रण किया है वह समूचे हिन्दी साहित्य में बेजोड़ है। तुलना की दृष्टि से कोई भी उससे जोड़ नहीं रखता।"[13]

शुभंकरपूर में यौन संबंध के भी उदाहरण दिखाई देते है। बहुविवाह पध्दति के कारण तथा विधवा को फिर से शादी करने की इजाजत न होने के कारण अवैध संबंध दिखाई देते है। इन्द्रमणि की लडकियाँ जनक किशोरी और शकुंतला जिनका ब्याह बिकौआ से हुआ था उसमें एक का अपने चचेरे भाई से और दूसरे का कुल्ली राउत के जवान बेटे से अवैध संबंध था। शकुंतला के पति की सात शादियाँ हुई थी और जनककिशोरी के पति की दस।[14] यहाँ स्पष्ट हैं बहुविवाह के कारण अवैध संबंधों को बल मिलता है। पति जब अनेक पत्नियों को रख सकता है तब पत्नी भी बाहर अवैध संबंध रखेगी। इस पर नारी शोषण के माध्यम से उपन्यासकार ने सोचा है। साथ ही सौत के कारण भी शोषण को बढावा मिलता है। इसपर भी प्रकाश डाला है।

शुभंकरपुर में शिक्षा प्राप्ति का अधिकार ब्राह्मणों ने अपने पास ही रखा है। शूद्र संस्कृत के स्त्रोत याद नहीं कर सकता। कुल्ली राउत को संस्कृत के कई स्त्रोत याद है। कहते संकोच होता है – गायत्री भी उसे आती थी। संकोच इसलिये कि जिस गायत्री के लिये ब्राह्मण–बटुकों का उपनयन संस्कार होता है, जो सिर्फ व्दिजों की चीज है, उस महान प्रणव

कोएक शूद्र जान जाय, यह असह्य है। जाने कैसे उसने सीख ली थी। ऐसे निम्न जाति के कुल्ली राउत को ब्राह्मण कैसे सहन कर सकते है। जयनाथ को किसी ने इसके बारें में बताया तो वह फुफकार उठी – "साले की चमडी उधेड लूँगा। शूद्र है तो शूद्र की भाँति रहे।"[15] इस कुल्ली राउत के बारेमें रतिनाथ सोचता है अगर यह ब्राह्मण होता तथा ब्राह्मण घर में पैदा होता तोनिश्चय ही उसके बदन पर फटे पुराने कपड़े न होते। इनके बच्चों को हमारी जूठन खाकर और हमारी पहिरन पहनकर नहीं पलना पडता। न ही इन्हें कभी स्कूल और पाठशला के जाने पर विरोध होता। अगर निम्न जाति को उच्च जाति के समान अधिकार मिल जाते तो वे पढ़–लिखकर समाज में अच्छी स्थिति प्राप्त कर लेते; फिर न तो उनका शोषण होता न कोई अत्याचार। यहाँ स्पष्ट है आज भी गांवों में उचनिचता का भाव रहा है। निम्न जाति को पढ़ने के लिए मना किया जाता है। ग्राम विकास में यह भेद–भाव बडी समस्या है। आज सरकार की उदारनीति के फलस्वरूप उसमें धीरे–धीरे परिवर्तन आ रहा है।

शुभंकरपूर की छोटी–सी पाठशाला में पढ़नेवाले लड़कों की संख्या केवल तेरह थी। उसमें से पाँच शब्द रूपावली, धातु रूपावली और अमर कोष पढ़ रहे थे। प्राइमरी स्कूल में तीस–पैंतीस लड़के थे। मुंशी जयवल्लभलाल खजूर की छडी लेकर बैठते इसीकारण बच्चे हमेशा डरते रहते। रतिनाथ भी उनसे बहुत डरता था। लेकिन इस पाठशाला का शिथिल अनुशासन रतिनाथ के लिए स्फूर्तिप्रद साबित हुआ। यहाँ पंडितजी लडकों को परेशान नहीं करते। रतिनाथ को पढ़ने की इच्छा होनेपर भी वह पूरी तरह पढ़ाई नहीं कर सकता क्योंकि रतिनाथ जब–जब जयनाथ को शब्द रूपावली, धातु रूपावली माँगता तथा अमरकोषा को जिल्द बँधवा देना चाहता तो जयनाथ कुछ न कुछ कारण निकालकर टाल देते। भीतर ही भीतर रतिनाथ कचोर और आत्मग्लानी से भर उठता। इसीकारण रतिनाथ अपने साथी की किताबों की चोरी करता है, कटोरा चलाने की बात जानकर वापस वहीं रख देता है। पाठशाला में अध्यापन की अपेक्षा बच्चों को अन्य कामों में जूटाया जाता है, जैसे, रतिनाथ का पंडितजी के घर का काम करना, बैलों को पानी पिलाना आदि काम करने पडते है। शिक्षा में व्याप्त गलत व्यवहार

का यह प्रतीक है। गाँव में नारी को हमेशा शिक्षा से दूर रखा गया। अतः रतिनाथ की चाची भी अनपढ़ है।

शुभंकरपूर के जमींदार दुर्गानंदनसिंह महाजनी करके ब्याज के रूपये किसानों से लूटते थे। किसानों में अब धीरे-धीरे चेतना का निर्माण हुआ। अपना संगठन बनाकर हक के लिए लड़ने लगे, तब जमींदारों ने अपना रूख बदला लेकिन उत्तेजित किसान एवं लोगों ने उसे धमकाया और कहा – "आपका खादी का कुर्ता पहले हम अपने खून से तर कर देंगे, उसके बाद जाकर जमींदारी – प्रथा उठा दीजियेगा ।"[16] ब्राम्हणों के एक गुट द्वारा किसानों का साथ देना, किसानों का अपनी मांगों पर अडिग रहना, सभा, जुलूस, गिरफ्तारी, सजा, जेल, हडताल, पीटाई, रिहाई आदि दमन चक्र और विरोधी कार्य का चलते रहना, ताराचरणव्दारा आंदोलन को आगे ले जाना, नेतृत्व करना, कडा संघर्ष होना, अंत में किसानों की जीत होना, खेतीपर उनका अधिकार होना आदि घटनाएँ किसान चेतना का प्रतीक है। यहाँ स्पष्ट है खेतिहर, मजदूर अब जाग उठा है, संघर्ष के लिए आगे बढ़ रहा है। अंत में उसकी जीत होती है। यह भी उपन्यासकार ने स्पष्ट किया है।

ताराचरण जैसा नेतृत्व ग्रामीण अंचल में बने तो विकास की धारा तेज बनेगी। किसानों का वह नेता बना, चाची को अखबार पढकर देश में घटित घटनाओं से अवगत कराया। इस बारे में डॉ.सुदेश बत्रा के मतानुसार – "नागार्जुन की क्रांतिकारी चेतना ने ग्रामीण नारियों को भी राजनीति आंदोलन में सक्रिय भागीदार बनाया है। उन्होंने 'रतिनाथ की चाची' उपन्यास में अनपढ़ चाची के मुख से कहलवाया है – मैं पढ़ी-लिखी नहीं हूँ मगर इतना समझती हूँ कि पच्चीस साल के रूसवालों ने अपने यहाँ जो नया संसार बसाया है उसके अन्दर जाकर राक्षसों की बडी से बडी फौज भी मात खा जायेगी।"[17] इसी तरह देश-विदेश की घटनाओं से अवगत कराने का कार्य गांव में अखबार शुरू करके लोगों मे नई चेतना जगाने का काम ताराचरण करता है। उसका यह कार्य समाजसेवी नेता के समान है जो आज के लिए आदर्शप्रद है।

नागार्जुन गांधीवाद से प्रभावित हैं। उनकी रचनाओं में हडताल, जुलूस, चर्खा बहिष्कार, अहिंसा आदि का वर्णन मिलता है। प्रस्तुत रचना में घर-घर में चर्खा चलाना, चाची व्दारा सूत कातना आदि घटनाएँ इसके उदाहरण है। चर्खा चलाने तथा सूत कातने से मजदूरों को मजदूरी मिलती है। चाची को प्रतिमाह पच्चीस-तीस रूपये मिलते हैं जिस पर वह जीविका चलाती है। मगर चर्खावालों की बेईमानी पर भी उपन्यासकार ने ऊँगली उठाई है। कम मजदूरी देना, सूत को कम नंबर का बताना, जिससे कम दाम या कम मजदूरी मिलना आदि रूप में गरीबों का शोषण होता है। गांधी विचारधारा में भी भ्रष्टाचार को बढावा देने का कुकर्म देश के कुछ लोग कर रहे है ऐसा यहाँ दिखाई देता है।

ग्राम-जीवन में मानव निर्मित समस्याएँ होती है, उसीतरह प्राकृतिक भी होती है। अज्ञान के कारण ग्रामवासी प्राकृतिक आपदा को 'कोप' मानता है। प्रस्तुत उपन्यास में नागार्जुन ने शुभंकरपूर की प्राकृतिक आपत्तियों को चित्रित किया है। शुभंकरपुर गाँव में प्राकृतिक आपत्तियाँ भी कुछ कम नहीं थी। मलेरिया के कारण कई लोगों की जाने गई। भोला पंडित उन्नीस दिन तब बुखार में रहकर परलोक सिधार गए। तो फूफी भी बीमारी की चपेट में आ गई। दम्मो फूफी के कारण ही चाची को समाज से बहिष्कृत किया था उसी चाची ने दम्मो की बड़ी सेवा की लेकिन बच नहीं गई। शुभंकरपूर के टोले में चौदह औरतें थी, उसमें से छः औरतों की मृत्यु हुई। लाश उठाकर ले जानेवाले नहीं थे। उसी तरह कुछ दिनों बाद हैजा की बीमारी फैल गई और चाची चल बसी। दवाइयों का प्रबंध किया था लेकिन चाची ने इन्कार किया। चाची इस जिन्दगी से थक चुकी थी। यहाँ स्पष्ट है ग्रामों में स्वास्थ्य की पूरी सुविधाएँ सही मात्रा में न होने के कारण मृत्यु की अधिकता रही है।

यहाँ मृतक संस्कार भी अनोखा है। रतिनाथ चाची के चिता की परिक्रमा करके मुँह में अग्नि का स्पर्श कराता है। यह विधि तीन बार होती है। फिर चिता जलाई जाती है। चिता उसी दिन बुझाई गई, बची-खुची दो हड्डियाँ सँभालकर बाकी रक्षा समेटकर एक छोटा चबूतरा बना दिया गया। ऊपर तुलसी का पौधा रोप दिया गया। हड्डियाँ ले जाकर समय और

सुविधा के अनुसार गंगा में प्रवाहित की गई। श्राध्द साधरण रूप में हुआ रतिनाथ तेरहो दिन उपस्थित था। एकादशाह को कच्ची रसोई का भोज और व्दादशाह को चूडा–दही का भोज हुआ। यहाँ अग्नी संस्कार, समाधि और श्राध्द–भोज उनके मृतक संस्कार के अंग लगते है।

यहाँ कई त्यौहार के गीत गाये जाते है। शुभंकरपूर में शादी होने के बाद इसीतरह के गीत गाये जाते। जिसे मंगल गीत भी कहा जाता है। त्यौहारों में दिवाली और भाई–दूज का त्यौहार प्रमुख रहता है।

ग्राम–जीवन में भौतिक सुविधा, याता–यात के साधनों का अभाव है। शुभंकरपूर और तरकुलवा में याता–यात के साधन का अभाव प्रमुख रूप सें नजर आता है। याता–यात के लिए बैलगाडी या घोडागाडी की व्यवस्था की जाती है। वह भी समय पर नहीं मिलती तथा जादा पैसे देने पडते है। स्वास्थ्य सुविधा नहीं होती। यहाँ बीमार होने पर वैद्य से दवा ली जाती है, वह वैद्य भी जाति–पाति में अटका हुआ दिखाई देता है। वह दूर से ही निम्न जातियों के लिए दवा देता है। अस्पताल की सुविधा न होने के कारण चाची की माँ को भी एक चमाइन को बुलाना पडता है। अभाव ग्रस्तता ग्रामजीवन का शाप ही लगता है। आज इसमें थोडा परिवर्तन हो रहा है।

नागार्जुन ने 'रतिनाथ की चाची' उपन्यास में 'ग्रामजीवन में नारी की स्थिति' का चित्रण किया है। इसकी भाषा शैली ग्रामीण और परिष्कृत है। इसमें संस्कृतनिष्ठ शब्दों से युक्त भाषा भी है, जैसे, गौरी की माँ संस्कृत के श्लोकों का उच्चारण करती है। विचारपूर्ण भाषा का स्वरूप भी इसमें दिखाई देता है – "समाज उन्हीं को दबाता है जो गरीब होते हैं। शास्त्रकारों को बलि के लिए बकरेही नजर आए। बाघ और भालू का बलिदान किसी को नहीं सूझा।" तथा "किसी भी युग में स्त्री को अमृत पीने का सुयोग नहीं मिला पुरूष को अमृत पिलाकर वह स्वयं विषपान ही करती आई है।"18 इसीतरह व्यंग्यपूर्ण भाषाशैली का भी प्रयोग इसमें हुआ है। नागार्जुन ने 'मुर्ख का लडका मूर्ख हो सकता है, मगर पंडित का लड़का पंडित नहीं होगा', लूट

लाओ कूट खाओ, दस का काम, देश का नाम आदी मुहावरे। सराई, सल्हेश, दुसाध, घिवही, आमिल, तस्मई, राउत, खवास, पौनी, बिसहत्थी, सरयूपारी, मनखप, मुठिया, कजरौटा, खदुका आदि बोली के शब्दों का प्रयोग किया है। भाषा शैली में संवाद शेती का भी प्रयोग हुआ है तथा इन संवादों के नाटकीयता, व्यंग्यात्मकता के कारण एक अलग सहजता और सरलता की अभिव्यक्ति मिली है।

नागार्जुन के 'रतिनाथ की चाची' का मूल उद्‌देश्य विधवा नारी की दयनिय स्थिति का चित्रण करना ही है। ग्राम जीवन में विधवा नारी को कौन–कौन सी मुश्किलों का सामना करना पडता है तथा समाज में उसको किस तरह रहना पडता हैं उसका चित्रण 'रतिनाथ की चाची' उपन्यास में हुआ है। अपने देवर के कारण चाची गर्भवती होती है यह खबर जब गाँव में फैल जाती है तब देवर उसे अकेली छोडकर भाग जाता है लेकिन चाची को उस पर टूटनेवाले पहाड को झेलना पडता है। गाँव में वह मुँह दिखाने के काबिल नहीं रहती। उसका अपना सगा बेटा भी उसकी पिटाई करता है लेकिन कोई भी उझे समझ नहीं पाता। अंत तक वह अपने ही घर में उपेक्षित नारी बनकर रह जाती है। उसकी बहु आने पर वह भी अपनी सांस को समझ नहीं पाती और दूसरे लोगों का सुनकर उस पर अन्याय, अत्याचार करती है। चाची की स्थिति इतनी बदत्तर होती है कि इसकी अपेक्षा वह मौत को गले लगाना पसंद करती है और इसीतरह वह खुद अपनी मौत का बुलावा बन जाती है। ग्राम जीवन में विधवा नारी की स्थिति, जन–जीवन में प्रचलित अंधविश्वास, रूढ़ि–परंपरा, अन्याय, शोषण, भौतिक सुविधाओं का अभाव आदि का भी विस्तृतता के साथ चित्रण किया है। अत: ग्राम जीवन में विधवा नारी की स्थिति कितनी भयावह होती है, दयनिय होती है इसका सबसे बडा उदाहरण हैं रतिनाथ की चाची'। प्राकृतिक प्रकोप के कारण ग्रामजीवन भयावह बना है। वहाँ कई प्रकार की बीमारियाँ स्थित है। दवाइयों की कमी, अंधविश्वास का प्रभाव, स्वास्थ्य की असुविधा, अज्ञान का प्रभाव होने के कारण कई लोग दवा की अपेक्षा दुवा पर विश्वास रखते है, ऐसा यहाँ लक्षित होता है। नागार्जुन गांधीवाद से प्रभावित होने के कारण प्रस्तुत उपन्यास में हडताल आंदोलन, जुलूस

आदि का भी चित्रण हुआ है। शिक्षा सभी के लिए अनिवार्य आवश्यक होनी चाहिए। इस पर भी उपन्यासकार ने बल दिया है। शिक्षा से भी ग्रामजीवन का विकास संभव है ऐसी धारणा नागार्जुन की रही है। इसी कारण ही इसके प्रसार, प्रकार पर अधिक बल देते है।

यहाँ स्पष्ट है, नागार्जुन ने ग्राम जीवन का यथार्थ रूप में चित्रण किया है। सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक, आर्थिक स्थिति का प्रभावी चित्रण करके शुभंकरपुर, तरकुलवा आदि गावों के जनजीवन को वाणी देने का प्रयास किया है। ग्राम बोली शब्दों का प्रयोग किया है। यह उपन्यास ग्रामजीवन की तसबीर लगती है।

## बलचनामा

– नागार्जुन

नागार्जुन का दूसरा आँचलिक उपन्यास 'बलचनमा' (1952) मिथिला के दरभंगा जिले के ग्रामीण अंचल पर आधारीत है। उपन्यास के कथानक में सन 1937 ई. तक की परिस्थितियों का तथा प्रगतिशील तत्वों का चित्रण है। डॉ. उमा गगरानी का कथन हैं – "1952 में प्रकाशित बलचनमा उपन्यास में एक साधन तथा स्वाधिकार वंचित किसान की संघर्षपूर्ण जीवन गाथा है। यह किसान बिहार के दरभंगा जिले के रामपुर गांव का रहनेवाला है। रामपुर मधुबनी में 'ढाई कोस' की दूरी पर स्थित है, जिससे गांव के भूगोल का कुछ पता लगता है।"[19] इस उपन्यास में दरभंगा जिले की राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक प्रवृत्तियों का चित्रांकन किया है। ग्राम्य जीवन के अभावों, उसकी समस्याओं के आर्थिक पक्ष पर अधिक बदल देते हुए भी लेखक ने ग्राम जीवन से संबंध्द अन्य बातों को विस्तार से प्रस्तुत किया है। डॉ.प्रेम भटनागर के शब्दों में, "बलचनमा उपन्यास का नायक बलचनमा ही उपन्यास की सारी कथा कहता है। बलचनमा पात्र मुखोद्गीरित आत्मकथा के रूप में लिखा गया एक आंचलिक उपन्यास है।"[20] अत: पात्रों तथा आँचलिक परिस्थितियों का चित्रण उसी के दृष्टिकोण से किया गया है।

दरभंगा आँचल में लोगों का मुख्य व्यवसाय खेती है। इनकी खेती करने की पध्दति पूर्णतया पुरानी है। धान बोना, उसको पानी देना, फसल काटना आदि पध्दति से होती है। तो जमींदार अत्याधुनिक साधन और सुविधा का उपयोग करते है। जमींदारों के देशी आमो के हजार पेड है। इसके अलावा सीसम, महुआ, तून, इमली, जीमड आदि जैसे तरह-तरह के सैकडों पेडों से भरा एक जंगल भी है। साथ-ही-साथ भैंस भी पाले जाते है। बलचनमा जमींदारों के यहाँ बचपन से यही भैंस को सँभालने का काम करता है। यहाँ स्पष्ट है कि जमींदारों की खेती प्रगत खेती है, वहाँ पशु-पालन के लिए नौकर रखने की प्रवृत्ति है, बलचनमा इसका उदाहरण है।

इस अँचल में रहन-सहन का ढंग आर्थिक परिस्थिति के अनुसार है। जमींदार बडे शानो-शौकत से रहते है। उनका पहनावा भी उसी प्रकार है, तो सामान्य किसानों में केवल शरीर ढँकने के लिए जितने आवश्यक होते है उतने ही कपडे है। बलचनमा बचपन में केवल लंगोटी पर रहता है। लोगों की आर्थिक स्थिति कमजोर होने के कारण इनकी यह हालत दिखाई देती है। इसका वर्णन करते हुए नागार्जुन कहते है - "कुछ मत पूछो भैया, मझले मालिक भारी कंजूस थे, देखते तुम तोकह उठते हाय राम, मैली धोती, पीले दाँत ,,,, यही डेढ़ लाख रूपैया का आदमी है।" गाँव की आर्थिक दशा सामान्य रही है। यहाँ तक भी सामान्य स्तर के है एकाद दूसरा व्यक्ति बहुमूल्य वस्तुओं को अपनाता है। चौधरी इसका उदाहरण है।

यहाँ ब्राह्मण, राजपूत, बनिया, चमार, मुसलमान आदि कई जातियाँ रहती हैं। लेकिन उच्च कही जानेवाली जातियाँ, निम्न जातियों पर अत्याचार करती हैं। गाँव के बूढ़े वैद्य निम्न जातिवालों के घर नहीं जाते फिर वह कितने भी बीमार क्यों न हो। इसी तरह जमींदार भी निम्न जातिवालों को निम्न दर्जा देते है। दूर से ही खाना देना, उनको मारना, गालियाँ देना ऐसे किने ही अत्याचार उनपर करते है। निम्न जातिवाले सभी यह चुपचाप सह लेते है। ग्रामों में जातीयता आज भी विभिन्न रूप में हावी है ऐसा यहाँ लगता है। बलचनमा के गाँव में पंडितों का राज था। बलचनमा जब फूल बाबू के साथ पटना जाता है तब सबसे पहले

फूलबाबू बलचनमा की बढे हुए बाल काट देते है, दाढी–मूँछ साफ करते है। तब बलचनमा कहता है – "इसी तरह सतमहला बाल छँटाये, दाढी–मूँछ साफ किये मेरी बस्ती में पहुँच जाते तो परलय (प्रलय) मच जाता।"[21] दाढी–मूछें कटाकर प्रलय का कारण बनना यह एक अनोखी मनोवृत्ति है और इसपर प्रकाश डालने का काम उपन्यासकार ने किया है।

जमींदार विभिन्न आयामों के द्वारा अज्ञानी, अनपढ गांववालों का शोषण करते है ऐसा यहाँ दिखाई देता है। नागार्जुनजी के पैनी दृष्टि से यह भी घटना छूटी नही। उसका चित्रण उन्होंने यथार्थता के साथ किया है। जमींदारों द्वारा निम्न जाति के साथ बुरा बर्ताव करना, बारह वर्षीय ग्वाले बलचनमा का चौधरी घराने की छोटी मालिकाइन के यहाँ चरवाहे का काम करना, नौन और सरसों के तेल के साथ महुआ की रोटी कलेवा, खूश होने पर सूखा या बासी पकवान देना, सड़ा आम फटे दूध का बदबूदार छेना, जूठन की बची कडवी तरकारी देना, बदबूदार दही देना तथा मालिकाइन का कहना कि ऐसी चीज उसके बाप–दादे ने भी नहीं खाई होगी। मझले मालिक का बारह रूपये कर्ज के बदले में बलचनमा की दाढ़ी से सात कट्टा जमीन हड़प लेना, मरणासन्न दादी की इच्छापूर्ति के लिए पोखर से मछली पकड लाने पर मालिकाइन व्दारा आम की आधी जली चेली से बलचनमा की पीठ पर दाग देना आदि घटनाओं से जमींदारों की प्रवृत्ति स्पष्ट होती है। बलचनमा को अपने घर की गरीबी तथा विवशता में सत्रह साल बिताएँ। जमींदारों व्दारा शोषित उनकी जिंदगी रही। सभी जमींदार ऐसे ही थे उन्हें सिर्फ जनता को लूटना मालूम था। फूलबाबू के पिता भी वैसे ही है। "सौ कसाई के एक कसाई, न लडके का मोह न लडकी का; न भाई का मोह न बहन का, न बाप का मोह न माय का। हाय रूपैया, हाय रूपैया । .... खेती गृहस्थी के अलावे सूद–ब्याज पर दस–बीस हजार की वसूल ... तहसील थी उनके हाथों में।" यह कथन जमींदारों की प्रवृत्ति को स्पष्ट करता है। किसान या कोई भी जाति बची हुई नही। दुसाध, मुसहर, चमार, खतबे, पासी, चुनिया, जुलाहा आदि लोगों की बस्तियाँ खेत मजूदर सभी मुसीबत में अपना जीवन चलाते है। इसका वर्णन देखिए – "फूल बाबू के बाप इन्हीं गरीबों की जमीन

जजाद हड़प–हड़प कर औकातवाले बने थे। इन लोगों का यही पेशा था।" फूलबाबू के पिता ही नहीं तो दादा और परदादा भी ऐसे ही लोगों को लूटते थे। कभी किसानों पर कूर्की लगाते तो कभी नीलामी। अदालत, हाकिम, दारोगा–पुलिस सभी जमींदारों के गुलाम ही थे। किसान किसी भी तरह से उनके हाथ से नहीं बचते थे। जमींदारों के नौकर भी जनता को लूटते है। राधा बाबू के ससूर जमींदार लखपती थे। जब उनके नौंकरों को दस रूपये से जादा तनख्वाह नहीं थी तब ये नौकरी तनख्वाह की कमी लूट–पाट से पूरा कहते है। इसका चित्रण करते हुए उपन्यासकार लिखते है – "रैयत को लूटने में जमींदार के नौकर–चाकर किसी बात की परवाह नहीं करते। हरी बेगारी से लेकर कोहड–कद्द तक रैयत की एक–एक चीज पर मालिकों का एकछत्र अधिकार रहा है। .... जमींदार का भी खजाना भरते हैं और अपना भी घर भरते हैं।"[22] ."कृषकों की निर्धनता, बेकारी, शोषण और अत्याचार के अनेक चित्र नागार्जुन के उपन्यासों में भरे पड़े है। यह सब सामंती व्यवस्था की देन है। सामंत अब नहीं हैं किंतु सामंती चेतना अब भी समाज से समाप्त नहीं हुई। सामंतों, जमींदारों और महाजनों ने नये मुखौटे धारण कर लिए है। अत्याचार और शोषण समाज में ज्यों–का–त्यों विद्यमान है।"[23] बाबूराम गुप्तजी का यह कथन आज की परिस्थितियों में भी उचित लगता है। यहाँ स्पष्ट है कि जमीदार और उनके नौकर किसी न किसी रूप में किसानों को,खेत मजदूरों को लूटते रहे है। गरीबी, अर्थाभाव, अशिक्षा के कारण शोषण बढता गया है ऐसा ही लगता है।

अंचल विशेषों में अंधविश्वास के कारण भूत–प्रेत व ओझा पर अत्याधिक विश्वास होता है, जिसकी आड में स्वार्थी और व्यभिचारी ओझा गुणियों की अश्लीलता, बीभत्सता को प्रश्रय मिलता है। बलचनमा अपने आँखों से इन दृश्यों को देखता है। बलचनमा की छोटी मालिकाइन की लाडली नौकरानी सुखिया कभी–कभी चीख मारकर रो पडती थी और नंगी होकर जीभ निकालती हुई कहती, "ही ही ही ही मैं काली हूँ, पोखर पर जो बौना पीपल है उसी पर रहती हूँ खा जाऊँगी समूचा गाँव । बकरा दो बकरा ...।" सुखिया पर भूत सवार देख मालिकाइन भगवती मैया को मनाने लगती तथा झाड–फूंक, पूजा–पाठ, टोना–टापर करनेवाले

ओझा दामो ठाकुर को बुलाती। दक्षिणवाले एकांत घर में वे बैठते। बडे मालिक की बाल–विधवा पुत्री जयमंगला को भी इस अवसर पर बिचवई के लिए बुला लिया जाता क्योंकि मालिकाइन ओझा से परदा करती थी। अनेक आडंबरों के साथ ओझा झाडना आरंभ करता – "ओम काली काली महाकाली इन्द्र की बेटी ब्रह्मा की साली फू ... इतना कहकर कुछ देर तक होंठ पटपटाते और फिर खवासिन की छाती पर फूँक मारते।"[24] थोडी देर बाद पसीने से भीगे हुए दामो ठाकुर बाहर निकलते। इस तरह सुखिया को साल में एक दो बार भूत पकडता तब दामो ठाकुर को बुलाया जाता और वह शांत होती। बलचनमा कहता है 'भूत या प्रेम अक्सर बाँझ औरतों को ही पकडता है।' स्पष्ट है सुखिया की दमित अतृप्त वासना जब उद्दीप्त होती तो उसकी तृप्ति के लिए ही यह ढोंग रचा जाता। इस तरह भूत–प्रेतों को शांत करने के बहाने ओझे – गुणी व्यभिचार में लीन होते है। अर्थात लोगों के अंधविश्वास का लाभ ओझे–गुणी इसतरह उठाते थे। इतना ही नहीं तो फसल अच्छी आने पर लोग बकरे की बलि देवी के सामने देते है। शादी पर भी बलि के रूप में कई बकरे चढ़ा दिये जाते। यहाँ स्पष्ट है कि अपनी इच्छापूर्ति के लिए बलि देने की प्रवृत्ति अधिक मात्रा में दिखाई देती है। ओझा घर्मिक व्यक्तियों की दमीत वासना की शिकार गांव की युवतीयाँ तथा विधवा नारी ही है। नारी शोषण का यह एक रूप लगता है। यदि नारी शिक्षित होगी, तो वह समस्या हल होने की संभावना है ऐसा मुझे लगता है।

धर्म का आधार लेकर अंधविश्वास को बढावा देने का कार्य ग्रामों में हो रहा है तथा उसे ही धर्म मानने की प्रवृत्ति रही है। बारिश के लिए, बाढ न आए इसलिए और अच्छी फसल के लिए मनौति के रूप में काली माई को दो–दो बकरों की बलि देना, बरहम बाबा को फूल–छत्र एवं पित्तरों का पिंड दान करना, बाबा कुसेसरनाथ को घी–दूध का दान करना, मुंडन, छेदन, सुन्नत, सराध और चलीसा करना आदि इसके उदाहरण है। यह सभी धार्मिक विश्वास के रूप में अपनाये जाते है। अंधविश्वास और धर्म के प्रभाव के कारण दबे लोग जमींदारों के अत्याचार का शिकार होने पर भी जमींदार को भगवान का अवतार मानते है। कोई उसके खिलाफ आवाज नहीं उठाता। यदि कोई प्रयास करेतो उसे पाप मानते है। इस पर

प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए डॉ. सुमित्रा त्यागी लिखती है – "बलचनमा उपन्यास में भी निम्न जातीय लोगों में उच्च समझने तथा उनसे दबने की प्रवृत्ति उनकी हीनता की द्योतक है। अत्याचार करने पर भी मालिक को भगवान के अवतार समझे जाते हैं। औरतें उनके विरूध्द सोचना भी पाच समझती है। बलचनमा की माँ भी इसी विचार की है। ... कलकत्ता और टाटानगर पहुँचनेवाले श्रमिक- कारीगर, मिस्त्री फोरमैन बन गये। बलचनमा ने अनुभव किया कि गाँव में निम्न जातियों को जमींदार वर्ग का सम्मान और चापलूसी करने की आदत पड गई थी।"[25]

धर्म के साथ–साथ गाँव के लोग अपनी रस्म–रिवाज या परंपरा को भी महत्व देते हैं। जमींदारो के यहाँ ऐसी परंपरा है कि जिस गाँव में लडकी ब्याही जाती है उसी गाँव में हर साल सौगात भेजी जाती है। उसी प्रथा के अनुसार बलचनमा के मालकिन के मायके से सौगात महिने में दो–एक बार आ जाती है। इस सौगात में दही–छाँछ, चिवडा से भरा चंगेरा, केले की घौंद, पक्वानों या मिठाइयों से भरी डालियाँ, धोती, साडी, लाख की चूडियाँ और भी बहुत कुछ आ जाता। शादी का गौना करना यह भी एक रिवाज है। गौने के पहले सूचना दी जाती है तत्पश्चात दोनों तरफ से गौने का दिन निश्चित होता है। गौने का संदेश देने के साथ–साथ सिंदूर और शगुन का सामान भेज दिया जाता है। गौने के एक दिन पहले लडकी के घर लडका और उनके लोग जाते है। वहाँ कई रस्मे निभाई जाती है। यह रस्म इसप्रकार मनायी जाती है इसका वर्णन देखिए – गौने के दिन दुल्हन लाल रंग की साडी पहनती है, उसके आँचल में धान–पान की पत्ती, सुपारी और हल्दी बाँधी जाती है और दुल्हे को जाते समय थोडी दूर तक महफे में रहना पडता है। लडकी के यहाँ से जाते समय पक्वान, दही, केरा, समधिन के लिए साडी, लाख की चुडियाँ आदि सामान लेकर भाई आता है। लडकी डोली में बिठाई जाती है और उपर से गुलाबी रंग की साडी डाली जाती है। दुल्हे के घर आने पर दुल्हा–दुल्हन को डोली पर सवार होकर आँगन में आना पडता है। औरतें गीत गाती हैं आदि। गौना के साथ यह रस्म पुरी होती है।

गाँव में लोग अज्ञानी है। गाँव में शिक्षा का कोई स्थान नहीं होता, शिक्षा का अधिकार केवल ब्राह्मण और जमींदारों को था। अगर गाँव में स्कूल हो तो भी पढ़ने का अधिकार केवल लडकों को दिया जाता है। बलचनमा की बहन रेबनी इसीकारण अज्ञानी रहती है इसका वर्णन देखिए – "पढाई–लिखाई, इलिम–विद्या, सब कुछ लडकों के भाग में। लडकी जब तक बिन ब्याही रही, खाएगी–पियेगी, थोडा बहुत शौक–सिंगार करेगी बस।"[26] बलचनमा की बहन रेबनी भी पढ़ी–लिखी न होने के कारण माँ की बीमारी पर बलचनमा को खत भी नहीं लिख पाती।

समाज में नारी का निरंतर शोषण होता आ रहा है। फिर वह नगर हो या गाँव। आज नारी पढी–लिखी होने के कारण कुछ हद तक ऊपर उठ चुकी है लेकिन पूरी तरह से आजाद नहीं हो पाई। गाँव में तो यह स्थिति बहुत ही भयावह बनी है। बलचनमा का गाँव जमींदारों का गाँव था। केवल जमींदारों का ही यहाँ राज चलता है। जमींदारों की बूरी नजरों की शिकार गाँव की युवतियाँ होती है। उसकी अस्मत को वे खिलवाड का साधन माननेवाले जमींदार अपनी भोग का साधन बनाते थे। इस पर भी उपन्यासकार ने प्रकाश डाला है। गाँव में किसी की लडकी सयानी हुई कि सबसे पहले जमींदारों की नजर उस तरफ जाती है। दौलत के नशे ये लोग अपना–पराया कुछ नहीं समझते। गरीबों के पास दौलत तो होती नहीं, उनकी दौलत उनकी इज्जत होती है। लेकिन यह बात जमींदार नहीं समझते। "बडे घरों के क्या जवान, क्या बूढे, बहुतेरों की निगाह पाप में डूबी रहती थी। गौना होकर कोई नई–नबेली किसी के घर जाती तो इन लुच्चों की आँख उसकीघूँघट के इर्द–गिर्द मँडराया करती। ... कई बार ऐसा होता है कि जिसे देखने को बाप बेताब हो उठता उसी पर बेटा भी फिदा।.. किसी की इज्जत–आबरू की बेदाग रहने देना उन्हें बर्दाश्त नहीं था।"[27] इस बारे में गुप्तजी का कथन है – "यह उच्च वर्ग चरित्र से भ्रष्ट भी है। 'बलचनमा' उपन्यास में नागार्जुन ने यह सिध्द किया है कि ग्राम की बहू–बेटियाँ को आधी पौनी आँखों से देखनेवाला यह वर्ग कितना भ्रष्ट कितना जालिम रहा है। इस उपन्यास के नायक बलचनमा की छोटी बहिन रेबनी का छोटे मालिक शील–भंग करने का

असफल प्रयत्न करते है।"[28] सभी जगह यही हाल था। बलचनमा की माँ का इस पर विश्वास नहीं था। लेकिन रेबनी उसकी शिकार होती है, तब उसकी आँखें खुल जाती है। वह जल्दी से रेबनी का गौना करने के लिए तैयार हो जाती है। नारी शोषण का दूसरा रुप–विधवा नारी है। विधवा का पुनर्विवाह नहीं होता था। गाँव की यही परंपरा होती है कि विधवा नारी मरते दम तक वैसी ही विधवा रहे। उसकी भावनाएँ कुचला दी जाती थी। विधवा नारी विधवापन के कारण अवैध संबंध के लिए विवश होती थी। जयमंगला इसका उदाहरण है। जमींदार की बेटी जयमंगला मुसलमान दर्जी के साथ भाग जाती है, तब गाँव में हंगामा होता है। लोग समझते है खानदान की नाक कट गई। यहाँ स्पष्ट है कि झूठी प्रतिष्ठा के कारण नारी का शोषण हो रहा है।

बलचनमा के गाँव में अस्पताल की सुविधा और याता-यात की सुविधा का अभाव है। इसीकारण बलचनमा की दादी बीमार पडने पर उसके लिए दवा लाना असंभव सा था। अगर गाँव में कोई बीमार होता तो मधुबनी के सरकारी अस्पताल से दवा लाता। लेकिन बलचनमा की आर्थिक स्थिति इतनी अच्छी नहीं थी। जमींदारों के घर डाक्टर आते। "बाबू–भैया लोग थे की छोटी बीमारी में भी उनके यहाँ डाक्टर बुलाये जाते। अढ़ाई रूपया उनकी फीस थी, एक रूपैया एक्के का भाडा। दवा का दाम अपना ऊपर से दो। बाप रे। गरीबों के पास पथ–पानी के लिए भी धेला–पैसा नहीं रहता, डाक्टर की फीस और दवार के दाम का क्या ठिकाना?" इसी से उनकी आर्थिक स्थिति का भी पता चलता है। अर्थाभाव के कारण दवाइयाँ भी मिलना मुश्किल था ऐसा लक्षित होता है। यहाँ याता–यात की सुविधाओं का अभाव के कारण बलचनमा अपनी ही शादी के लिए दो–तीन कोस पैदल ही चलकर जाता है।

गाँव के लोग मुख्यतः खेती पर निर्भर रहते है। खेती में भी प्राकृतिक आपदा के कारण अनेक बार अनिश्चितता रहती है। यह आपत्तियाँ बाढ, भूचाल, अकाल आदि कई रूपों में दिखाई देती है। इस बारे में डॉ.गगरानी का कथन है – "सूखा, बाढ, अकाल आदि प्राकृतिक प्रकोपों का शिकार भी अंततः निम्न वर्ग ही होता है। देवा का बिहार प्रांत इन

प्राकृतिक प्रकोपों से कई शताब्दियों से जूझता चला आ रहा है। चूंकि नागार्जुन और रेणु के उपन्यासों का कथ्य बिहार जन–जीवन ही है इसलिए सहज ही उनके उपन्यास में इसका चित्रण हुआ है।"[30] बलचनमा के गाँव में एक बार भूचाल आता है। गरीबों को कुछ जादा हानि नहीं पहुँचती क्योंकि उनके घर छोटे–छोटे थे। लेकिन जमींदारों की हवेली गिरती है, उसमें डिप्टी साहब की नई दुल्हन मर जाती है। महपूरा में खान बहादुर का मकान गिरा, बल्ली बाबू का घोडा मरा, गोसाई पोखर के उत्तर के मैदान में बडी दरार पडी तो सीतामढ़ी में काफी नुकसान हुआ, सडकें फट गई, सरकारी बँगले, थाना, कचहरी, अस्पताल, स्कूल, पोस्ट ऑफिस आदि सब बेकार हो गए। रेल्वे लाईन, तार के खंबे उखड़ गए इतनाही नहीं तो देवी–देवता के मंदिर भी इससे नहीं बच सके। एक बार बाढ़ भी आई थी। इसीतरह गाँव के लोग प्राकृतिक आपत्ति के शिकार होते है। इसीकारण ग्रामविकास में कठिनाईयाँ पैदा होती है।

गाँव के लोगों में नशापान भी दिखाई देती है। बलचनमा के जमींदार हुक्का पीने के आदी है तो दामो ठाकुर शराब पीता है; साथ ही भांग जादा पीता है। वह दिन में दो–दो बार भंग पीना जरूरी समझता है।

गाँव में राजनीति और भ्रष्टाचार का आपसी संबंध दिखाई देता है। स्वतंत्रता संग्राम में अनेक लोग कूद पडे थे उनमें ही एक है फूल बाबू। बलचनमा को वे अपने साथ पटना लेकर गए थे। वहाँ उन्होंने बलचनमा को कमीज, लेकर दी, बाल ढंग से कटवाए। बलचनमा गालियाँ, फटकार से बच गया था। फूल बाबू के प्रति उसके दिल में श्रध्दा, आदर्श, आदर ने जगही ली थी। नमक आन्दोलन में जब फूलबाबू गिरफ्तार हो गए और लौटे तो गांधीवादी पध्दति से जीवन बिताने लगे। उन्हें नौकर की आवश्यकता न रहीं तो बलचनमा घर लौट आया। कुछ दिन वह राधा बाबू के बरहमपुरा के आश्रम में रहा। फिर बटाई पर खेत लेकर मजदूरी करने लगा। सोशालिस्ट राधा बाबू के प्रभाव से बलचनमा सामाजिक उत्पीड़न के कारणों की वास्तविकता समझने लगा। एक बार बलचनमा अपने परिवार पर किए गए मालिक के अत्याचारों से खिन्न होकर परामशीर्थ काँग्रेसी नेता फूल बाबू के पास जाता है तोउसे उनसे

अपने मालिक के पैर पकड़ने का परामर्श मिलता है। उसके पश्चात उसे फूलबाबू व्दारा गाँव में कुओं की खुदाई के लिए प्राप्त धन में से धन कमाने की खबर मिलती है तो उसके हृदय को ठेंस पहुँचती है। इस बारे में कुन्ती अपनी क्षुब्धता के साथ कहती है – "ये लोग जुलुम करते है बेटा, देते है दो और कागज पर चढाते है दस । इमान– धरम इनका सब डूब गया, तेल जरे तेली का और कटे मशालची का। छोटे मालिक का सर बेटा आया था अफसर बन के खैरात बाटने। हो न हो, हजार पाँच सौ उसने जरूर मार लिया होगा ..... पता लगाना बेटा, मेरे नाम के रूपैया चढा है।" इससे गाँवों में व्याप्त भ्रष्टाचार, सरकारी विकास योजना में अडसर भ्रष्टाचार ही है, यह यहाँ स्पष्ट होता है। बलचनमा की फूलबाबू के प्रति श्रध्दा हमेशा के लिए उठ जाती है। वह काँग्रेस के विराध में कहता भी है – "स्वराज मिलने पर बाबू – भैया लोग आपस में ही दही–मछली बाँट लेंगे, जो लोग आज मालिक बने बैठें हैं आगें भीतर माल वही उडावेंगे।"[31] यह कथन नेताओं के स्वार्थी, मतलबी वृत्ति को स्पष्ट करने में सक्षम लगता है।

जमींदारों व्दारा किसानों की भूमि हडपने के षड़यंत्र को देखकर समाजवादी नेता डा.रहमान राधे बाबू को जमींदार खानबहादुर के विरूध्द किसानों को संघर्ष करने का परामर्श देता है। डा.रहमान नागार्जुन के विचारों का वाहक है और किसानों में प्रगतिवादी चेतना लाने का कार्य करता है यह यहाँ स्पष्ट होता है। किसान भूमि की रक्षा के लिए संगठित होते है, बलचनमा भी वालिंटियर बनता है। फसल काटने पर छीन–झपटों में एक किसान मर जाता है। पुलिस दफा 144 तोडने के अभियोग में किसानों को गिरफ्तार कर लेती है। बलचनमा और उसके साथियों को पीटा जाता है। इसी प्रकार गाँव में जनता में विद्रोह के स्वर दिखाई देते हैं, उनमें जागरूकता, अधिकारों के प्रति सजगता एवं क्रांति के बीज अंकुरित होते है तथापि मुख्यत: नेताओं की स्वार्थी वृत्ति उसे पनपने नहीं देती। यहाँ स्पष्ट है, अब धीरे–धीरे किसानों, मजदूरों में अपने अधिकारों के प्रति सजगता पैदा हो रही है लेकिन पुलिस, सरकारी अफसर के साथ जमींदारों की दोस्ती होने के कारण भ्रष्टाचार को बढावा देकर गंदी राजनीति खेलकर वे

लोग इस चेतना को दबाने का भरकस प्रयास करते है। इसपर भी उपन्यासकार ने प्रकाश डाला है। इसके संदर्भ में डॉ.विवेकी राय का कथन है – "प्राचीन संस्कृति के साथ धर्म जुड़ गया और उसने उसे एक मधुर रूप दे दिया परन्तु आधुनिक सभ्यता से राजनीहित जो जुड़ गई तो उसने उसे मानवीय स्तर पर विकृति और कडवाहट से परिणूर्ण कर दिया।"[32]

बलचनमा में प्रगतिवादी चेतना को उपन्यासकार ने पात्रों के चरित्र–चित्रण के सहारे उसे स्पष्ट भी किया है। डॉ.राधेश्याम कौशिक के शब्दों में – "बलचनमा में हमें 'गोदान' के होरी जैसी विवशता दृष्टिगोचन नहीं होती। बलचनमा का विद्रोह और प्रतिशील चेतना उसे युग की परिवर्तित स्थितियों में ग्रामीण मजदूर की नई पीढ़ी का प्रतिनिधि बना देती हैं। नागार्जुन के उपन्यासों में 'बलचनमा' का चरित्र जितना स्वाभाविक, संवेदनपूर्ण तथा प्रभावशाली बन पड़ा है – उतना अन्य कोई नहीं।"[33]

ग्रामजीवन में लोकगीत, लोककथा का अपना एक अलग स्थान होता है। गाँव में त्यौहार, पर्व, संस्कार, विवाह, विरह के अवसरपर गीत गाये जाते है। बलचनमा अपना विवाह करके आमों के बाग से जा रहा था तब एक आदमी आम के बाग में गुनगुनाता हुआ दिखाई देता है –

"सखि हे मजरल आमक बाग ।
कुहू कुहू चिकरार कोइलिया
झींगुर गावए फाग ।
कंत हमर परेदस बसइ छाथि"[34]

'बलचनमा' उपन्यास में स्वाभाविकता लाने के लिए आँचलित भाषा का प्रयोग किया गया है। जैसे – बिसुक (बिचक), दुसाध (कठिन), मूल (मूर), किरपिन (कंजूस), जासती (ज्यादा), सबने भंग आंदोलन (सविनय भंग आंदोलन), जिनगी (जिन्दगी), मीता (मित्र), उनेस (उन्नीस), करूआ (कड़वा), गौसेया (सूरज) आदि ऐसे कई शब्द है। जिन शब्दों को समझने में अन्य भाषा भाषी पाठकों को कठिनाई हो सकती है। उनका अर्थ पादटिप्पणी में दिया

गया है। इसकी भाषा पात्रानुकूल, व्यंग्यपूर्ण, ध्वन्यात्मक तथा मुहावरे–कहावतों से परिपूर्ण है। डॉ.गोपाल राय का इस बारे में कथन है – "बलचनमा की कहानी में कुछ ऐसी सच्चाई, सहजता, भोलापन, ईमानदारी और निरीहता है कि पहली मुलाकात में ही उसमें गहरी रूचि पैदा हो जाती है।"[35] जनबोली के शब्द, पात्रानुकूल भाषाशैली उपन्यास की कथावस्तु में ग्रामीनता लाने में सफल रहे है। ऐसा लगता है।

निष्कर्ष :–

प्रस्तुत उपन्यास 'बलचनमा' (1952) में हमें रूढ़ियों–परंपराओं से बँधा गाँव अपने में ही सीमित रहनेवाला गाँव दिखाई देता है। वहाँ राजनीति का प्रवेश, भ्रष्टाचार के दर्शन भी होते है। उनमें नवचेतना, जागरूकता पैदा हुई है, वे अपने अधिकार के लिए झगडते है, अर्थात अपने में ही सीमित रहनेवाला गाँव धीरे–धीरे परिवर्तित हो रहा है। इस उपन्यास की नागार्जुन का यथार्थवादी प्रगतिशील दृष्टिकोन तथा सशक्त चरित्र सृष्टि आदि विशेषता है। बलचनमा का विद्रोह और प्रगतिशील चेतना उसे ग्रामीण पीढ़ी का प्रतिनिधी बना देती है। नागार्जुन के उपन्यासों में 'बलचनमा' का चरित्र स्वाभाविक, संवेदनपूर्ण तथा प्रभावशाली बना हुआ है, जो अन्य उपन्यास में इतना प्रखरता के साथ नहीं दिखाई देता। ग्रामंचलों में स्थित सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिकता भी यथार्थ रूप में चित्रित हुई है। कानून से जमींदारी प्रथा समाप्त हो चुकी है मगर जमींदारों की एठन अभी भी दिखाई देती है। रहमान नागार्जुन के विचारों का प्रतिनिधी है, जो किसानों का संगठन बनाता है। संगठन का महत्व बताकर क्रांति का संदेश देनेवाला यह पात्र एक प्रगतिवादी ही है। धनाभाव, अशिक्षा, अंधविश्वास, असुविधा आदि कई समस्याओं के साथ ग्रामजीवन का यथार्थ शब्दों में चित्रण किया है।

## गंगा मैया

**भैरवप्रसाद गुप्त**

भैरवप्रसाद गुप्तजी का 'गंगा मैया' (1953) उपन्यास बलिया जिले के एक गाँव की पृष्ठभूमि पर लिखा गया है। इस उपन्यास में 1947 से लेकर 1951 तक की राजनीतिक एवं सामाजिक व्यवस्था की संक्रमणकालीन स्थिति को चित्रित करने का प्रयत्न किया है। इस उपन्यास के बारे में डॉ. बालकृष्ण गुप्त का कथन है – "गंगा मैया गुप्तजी का सामाजिक उपन्यास है, जिसमें प्रगतिवादी धारा को गाँव के वातावरण में रखकर चित्रित किया गया है। किसानों जमींदारों का संघर्ष, गांवों का पारस्परिक वैमनस्य, बिरादरी की अडंगेबाजी, पीढ़ियों का संघर्ष रिश्वतखोरी तथा पुलिस आदि के मुहकमें की हथकंडे – बाजियों की चर्चा पर उपन्यास का कलेवर निर्मित है और उपन्यास में गंगा मैया का अनेक जगहों पर गुणगान किया गया है।"[36]

'गंगा मैया' उपन्यास को आँचलिक उपन्यासों की श्रेणी में रखा जाता है। उपन्यास के केंद्र में गोपी की भाभी, गोपी और मटरू को पात्र के रुप में तथा अंचल के रुप में गंगा मैया के अंचल को रखा गया है। वहाँ के किसान गंगा मैया के अंचल को छोडने के लिए बिलकुल ही तैयार नहीं हैं। इस बारे में शंभुसिंह का कथन यह है कि "गुप्तजी के 'गंगा मैया' में किसानों का आँचलिक जीवन प्रगतिवादी चेतना से मुखरित हुआ है। गंगा मैया के अंचल को छोडना किसानों को भाता ही नहीं है।"[37]

लोगों का मुख्य व्यवसाय खेती है। इसके बिना उनका जीवन अधूरा ही लगता है। खेती की पध्दति पुरानी ही है। मटरू का दीयर गांव के आसपास जंगल है तथा किसानों के खते हैं। यहाँ खेती से जुड़े अनेक व्यवसाय चलते हैं। यहाँ के गाँव अपने आप में स्वयंपूर्ण है। मुख्यतः खेती पर ही इनका जीविकोपार्जन होता है।

गाँव के लोग बहुत ही सीधे–सादे, अज्ञानी, अपनी परंपरा, रस्म–रिवाज को पकड़े हुए जी रहे हैं। उनकी रहन–सहन तथा पोशाख सीधा ही है। विवाह जैसे अवसर पर ही वे

सजते–सँवरते हैं। अन्यथा वे सीधा रहना पसंद करते है। मटरू पहलवान तो केवल लूँगी पर ही रहता है, तो स्त्रियाँ विवाह के समय सजती हैं। विधवा होने पर केवल सफेद साडी में रहती है। यही गाँव की प्रथा–परंपरा भी है।

कुश्ती खेलना, देखना गाँव के लोगों का शौक रहा है। मानिक और गोपी दोनों भी अपने गाँव की शान है। मानिक और गोपी इन दो भाईयों पर पूरे गाँव को अभिमान है। इनसे जीतनेवाला आस–पास के गाँव में भी नजर नहीं आता। बचपन से ही वे दोनों अखाड़े में जाते थे। आजादी, बेफिक्री, दूध और अखाड़े की शिक्षा से उनकी देह साँचे में ढलने लगी। नतीजा यह हुआ कि उम्र से दुगुना और तिगुना उनका शरीर एवं बल बढने लगा। पच्चीस तक आते–आते उनका शरीर, बल हाथी की तरह हो गया। गाँव के लोगों ने उन्हें पास–पड़ोस के गाँव में कुश्ती खेलने के लिए भेज दिया। उन्हें जवार गाँव में भी भेजा था क्योंकी वहाँ भी पहलवानगी करनेवाले लोग अधिक थे। जवार में सबसे नामी बूढ़े जोखू पहलवान थे। किसी ने भी उनसे भीड़ने की हिम्मत नहीं की थी। गोपी के साथ कुश्ती करने के लिए लोग घबराते हैं यह देखकर जोखू पहलवान ने गोपी का पान लिया। यहाँ यह नियम था कि कुश्ती के ललकार का पान ब्राह्मण और नाई के हाथ देकर पहलवानों के पास भेज दिया जाए। उसके अनुसार गोपी ने पान भेज दिया और जोखू ने पान लिया। नियत–तिथि पर गाँव का अखाडा बना, अशोक के पत्तों के फाटकों और रंग–बिरंगी कागज की झंडियों से सजाया गया। जवार में कुश्ती देखने के लिए दूर–दूर से गाँव के लोग आए थे। कुश्ती शुरू हुई, गोपी ने अनजाने में ही दाहिना पैर जोखू के कोख में मारा। जोखू वहाँ ही मर गया। क्रोध से शोले उठने लगे प्रतिशोध के रुप में जवार के लोगों ने मानिक की जान ले ली। गोपी भड़क उठा और उसने जवार में जाकर दो–तीन आदमियों को मार डाला। इसीकारण उसे जेल में जाना पडा। लोगों के शौक से शुरू होनेवाला खेल अंत में कई आदमियों की जान ले गया। लोगों की घरगिरस्ती उजड़ गई। ग्रामवासियों के मनोरंजन का अहम साधन कुश्ती थी। पहलवान गाँव की नाक मानी जाती थी। जोखू ऐसा ही पहलवान था उसकी मृत्यु से तबाही मच गई। इससे यही स्पष्ट होता है कि गाँव

के लोग अपने गाँव की अस्मिता बनाए रखने के लिए कुछ भी कर सकते है। इसी संघर्ष ने पाँचों की जान ले ली। कई गिरफ्तार हो गए, कई परिवार उजड़ गए। चार–चार साल की जेल हो गई।

यहाँ विवाह की पध्दति भी अनोखी है। यहाँ लडकी का कुल, उसका खून, हड्डी देख ली जाती है। लडकी का परिवार अपने बराबर का हो तो विवाह तय किया जाता था। इसमें सबसे पहले लड़कीवाले लड़के के घर पर 'बरैछा' का सामान देकर आते है। बरैछा अर्थात धोती, रूपया और मिठाई की गठरी। फिर बिरादरी के लोगों को बुलाया जाता है। पंडित को बुलाकर मुहूर्त निकाला जाता है। विवाह में बिरादरीवालों को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। पूरी बिरादरी इस समय इकठ्ठी होती है। बिरादरी को ठुकराकर विवाह तय हो जाए तो उसे बिरादरी से निकाला दिया जाता है। उसे बहिष्कृत किया जाता है।

गाँव में मेहमान को देवता के समान माना जाता है। मेहमान के आदर सत्कार में कोई भी कमी नहीं आने देते। गोपी के गाँव में मेहमानों के लिए पहले गुड़, पानी दिया जाता है तथा फिर पूछताछ शुरू होती है। यहाँ स्पष्ट है कि भोले–भाले गाँववाले मेहमानों का आव–भगत करने में हिचकिचाते नहीं। अपनी प्राचीन परंपरा–प्रथा के अनुसार स्वागत करना यह हर एक गाँव की विशेषता रही है। उसके यहाँ दर्शन होते है।

गाँव के लोग अज्ञानी होने के साथ–साथ धार्मिक और अंधविश्वासी भी होते है। गोपी और मटरू को बहुत दिनों तक घर से कोई भी मिलने नहीं आया लेकिन उनको विश्वास था कि अगले महिने में चन्द्रग्रहण पड़ रहा है और उस समय कोई न कोई जरूर आएगा ऐसी उनकी धारणा थी। "ग्रहण में काशी–नहान का बड़ा महत्व है। एक पंच, दो काज।"[38] मटरू को मिलने के लिए उसके ससूर और साला आता है। मटरू चाहता है, गोपी भी उनसे मिले लेकिन वॉर्डर गोपी को मटरू के साथ जाने की इजाजत नहीं देता तो मटरू बहुत बिनती करता है और कहता है – "वार्डर साहब, इतने दिन हो गये यहाँ रहते, कभी आप से कुछ न कहा। आज मेरी बिनती सुन लो। गंगा मैया तुम्हें बेटा देगी।" वार्डर निपूता था। कैदी उसे बेटा होने की

दुवा करके उससे बहुत कुछ काम करवा लेते थे। यही इसकी कमजोरी थी। उसे लगता जाने किसकी जीभ से भगवान बोल पडे। इसमें उसकी धार्मिकता, अंधविश्वास की झलक दिखाई देती है।

शकुन–अपशकुन पर भी उनका विश्वास है। तोते की चीख को आफत का कारण मानकर उसे अपशकून माना जाता है। शाम के समय अकेला तोता बडे दर्दनाक स्वर में चीखता हुआ मटरू के सिर से उड़ता है, तो उसे मटरू अपशकून मानता है और पूजन से कहता है – "मेरी हीरामन तूफान मे फँस गयी है, सुन रहा है न उसका चीत्कार।"[39] उसी तूफान भरी रात में वह गोपी की मदद करने निकल पडा।

ग्रामीण जन–जीवन में नारी हमेशा शोषित है और उसमें भी विधवा नारी की स्थिति दयनीय होती है। इसके बारे में डॉ.बालकृष्ण गुप्त का कथन है – "हिन्दु समाज में विधवा पर दुहरा आक्रमण होता है। एक ओर वह समस्त मानवीय अधिकारों से वंचित दीन–हीन निराश्रित प्राणी हैं, दूसरी ओर समाज उसके चरित्र की नाप–जोख इतनी पैनी दृष्टि से करता है कि मानों हि धर्म का आस्तित्व केवल वैधव्य–निर्वाह पर ही टिका है। इस दुहरे आक्रमण से विधवा को बाहर निकालने का कोई मार्ग नहीं।"[40] ग्राम में विधवा नारी की स्थिति अधिक ही शोचनीय है। परिवालों की सेवा करना, अपनी इच्छाओं को दबाना, चूपचाप जीवन बिताना यही उसकी स्थिति होती है। मानिक की पत्नी का जीवन भी इसप्रकार का रहा है। मानिक की मृत्यु होना, देवर गोपी का जेल जाना, बूढे सास–ससूर की सेवा करना, बहन की सहायता करना, रामायण पठन, पूजा–पाठ करना आदि कर्म करके जीवन जीनेवाली मानिक की पत्नी है। लेकिन उसकी मानसिक आन्तरिक भावना को कोई समझ नहीं पाता। वह मांग में सिंदूर भरकर एक सहारा चाहती है मगर बिरादरीवालों का डर है। पति के वियोग में वह तडपकर मर जाना चाहती थी लेकिन यह भी इच्छा पूरी न हीं हो सकती। देवर के प्रति उसके मन में कोमल भाव जागृत होने लगते है। कुछ दिन बाद गोपी के लिए रिश्ते भी आने लगते है तब उसका मन झूँझलाहट से कराह उठता है। उनकी जाति में पुरूष को दूसरी शादी करने का हक है किन्तु नारी को

नहीं। वह वही शापित जीवन जीती रहें। वह अपनी आन्तरिक इच्छा किसी के साथ में प्रकट नहीं कर पाती क्योंकि वह क्षत्रिय नारी थी। उसकी जाति के बंधन कडे थे। वह इन बंधनों को तोडना तो चाहती थी, लेकिन तोड नहीं पाती। उससे तो उसके घर में काम करनेवाले हलवाहे बिलरा की जाति को ऊँची जाति मानी जाएगी। क्योंकि उनकी जाति मे विधवा का पुनः विवाह किया जाता था। गोपी के भाभी की अवस्था पर सच्ची मानवीय सहानुभूति प्रकट करता हुआ बिलरा कहता है – "यह कैसा रिवाज है, मालकिन, आपकी बिरादरी का? इस मामले में तो हमारी बिरादरी अच्छी है, जो कोई बेवा इस तरह अपनी जिन्दगी खराब करने को मजबूर नहीं।"[41] यह बिलरा का कथन विधवा नारी की विवशता, मजबूरी प्रभावी ढंग से प्रकट करने में समर्थ है। यहाँ स्पष्ट है ऊँची जातिवाले अपनी झूठी प्रतिष्ठा की रक्षा के नाम पर विधवा का मानसिक, शारीरिक शोषण करते है। ऐसी बात किसी के जबानपर आती है तो ऊँची जातिवाले अपमान मानकर उसे फटकारते है। बिलरा का कथन सुनकर भाभी उसे फटकारती है। लेकिन उसके मन में वही विचार आता था। उसका मन गोपी की ओर जाता था। जेल में अटका गोपी भाभी को चाहता है, तब भाभी हर्षविभोर होती है। गोपी जेल से छूटने के बाद भाभी से शादी करना चाहता है लेकिन माता–पिता दोनों ही विरोध करते है। इस बारे में डॉ. सुरेश बत्रा के विचार सोचनीय लगते है – "वैधव्य नारी के लिये समाज द्वारा अभिशाप बना दिया गया है। विधवा विवाह को समाजद्वारा अस्वीकार करके एक पूर्ण व्यक्ति को अशुभ, अमंगलिक बनाकर जीवन के समस्त सुख छीन लिये गए।"[42] गोपी की माँ तो भाभी को ही दोषी मानकर उसको गालियाँ देती है, मर जाने को कहती है। भाभी यह बर्दाश्त नहीं कर पाती। अंत में कुएँ में आत्महत्या करने जाती है। लेकिन गोपी उसे आत्महत्या नहीं करने देता। वह भाभी को मटरू के यहाँ छोड देता है। मटरू उसे अपनी बहन बना लेता है और उसकी शादी फिर से गोपी के साथ कर देता है। इस विवाह पर डॉ. सुमित्रा त्यागी ने इसे क्रांतिकारी मानकर कहा है – "देवर–भाभी के विवाह द्वारा लेखक ने प्राचीन परंपरा पर आघात कर नवीन क्रांतिकारी दृष्टिकोण को अपनाया और दो व्यक्तियों के जीवन को बर्बाद होने से बचाया है।"[43]

डॉ.सुरेंद्रप्रताप यादव के विचार चिंतन के अनुसार वे लिखते हैं – "अप्रत्यक्ष रूप से लेखक ने इस उपन्यास में यह बताया है कि विवाह के संदर्भ में भी समाज में जो बुराई हैं उसे दूर करने के लिए उसमें सुधार लाने के लिए साहस और निर्भिकता के अवलंब की जरूरत होती है। मटरू एकदम निर्भीक हैं जो आज की प्रगतिशील युवा पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता है।"[44]

हर गाँव में जमींदार सबसे बडी आसामी होती है। वे हमेशा अपना भला सोचते है और भोले–भाले किसानों को लूटते हैं। लेकिन किसान जमींदारों के खिलाफ जाने का साहस नहीं कर पाते। लेकिन मटरूने यह कार्य किया। मटरू पहले पहलवान था लेकिन कहते हैं कि किसी ने उसके खाने में जहर मिलाया और तब से वह हमेशा बीमार रहने लगा। फिर महरू ने पहलवानगी छोडकर खेती तरफ ध्यान दिया। गंगा के किनारे खेती करने लगा। फसल, आमदनी बढने लगी। जमींदारों ने चोरी के झूठे जुर्म में मटरू को जेल पहूँचा दिया। छूटने पर उसने दुगुने उत्साह सेखेती का काम शुरू किया। तब किसानों में केवल उसका नाम होठों पर था। किसानों अपना सारा नेतृत्व उसे सौंप दिया। मटरू एक प्रगतिवादी विचारधारा का आदमी होने के कारण वह गोपी को भाभी से ही शादी करने की सलाह देता है। इतना ही नहीं तो मटरू खुद विधुर गोपी से विधवा भाभी का विवाह कराकर विधवा नारी समस्या पर प्रगतिवादी दृष्टि से व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत करता है।

मटरू जो एक चेतनासंपन्न किसान है, जमींदारों की अवैध अमलदारी और मालिकाना हक के विराध में खडा होता है। वह श्रमजीवी किसानों को संगठित कर उन्हें वर्गीय चेतना से परिचित कराता है और जमीदारों का खुला विरोध करते हुए कहता है – "तुम लोग अपनी रकम वापस माँग लो। साफ कह दो हमें जमीन नहीं देनी। यही होगा न कि एक फसल न वो पाओगे।"[45] मटरू एक श्रमजीवी सर्वहारा है। वह अकेला ही दीयर के मैंदान में झोंपडी बनाकर रहता है और परिश्रम से खेती करता है। श्रमवाद में उसकी सच्ची आस्था है वह कहता है – "यह धरती गंगा मैया की है। जो चाहे आए, मेहनत करे, कमाए, खाए। जमींदारों ने अगर इधर आँखें उठायी तो मैं आँखें फोड दूँगा।" उसका यह कथन किसानों को प्रेरित करता है और

श्रम प्रतिष्ठा की महत्ता को उजागर करता है। भैरवप्रसाद गुप्त के 'गंगा मैया' उपन्यास में गंगा मैया का मटरू के जीवन में आस्था एवं विश्वास उत्पन्न करना, जन्मभूमि के प्रति श्रध्दा और गतिशील जीवन के प्रति आस्थावादी दृष्टिकोन प्रस्तुत करता है। 'गंगा मैया' का मटरू गोदान के मृतक होरी का जीवितरूप है जो सामूहिक किसानों को जीवन का आधार बनाकर जमींदारों के अत्याचारों को सिर–माथे न रखकर उसके विरूध्द अपनी संपूर्ण शक्ति से लडता है। ऐसा लगता है।

खेती यह एक ऐसा व्यवसाय है, जिसमें हमेशा अनिश्चितता रहती है। किसान प्रकृति पर निर्भर रहते है। कभी बारिश जादा तो कभी कम, कभी बाढ़ तो कभी अकाल ऐसी प्राकृतिक आपत्तियों से उन्हें जूझना पडता है। मटरू के दीयर में भी ऐसी ही परिस्थिति है। गंगा नदी के किनारे वे अपनी खेती करते है। बारिश में उन्हें खेती करना असंभव होता है क्योंकि बारिश में गंगा नदी को बाढ आ जाती है। बाढ का पानी कम हो जानेपर वहाँ उनकी खेती शुरू हो जाती। नदी कभी–कभी तो समुन्दर का रूप ले लेती है। इसका वर्णन देखिए – "आखिर नदी जब समुन्दर बन गयी और कहीं भी किनारे मटरू के लिए जगह न बच गयी तो लाचार हो, माँ का दामन छोडकर, उसेकगार के गाँव में झोंपडी खडी करती पड़ी।"[46] यहाँ स्पष्ट है कि खेती प्रकृति के हाथ का खिलौना ही है।

गाँव में जाति के बंधन बहुत ही कडे थे। विधवा को यहाँ पुन:विवाह करने का अधिकार नहीं था। लोग अपने रीति–रिवाज, परंपरा, रूढ़ियों को छोडने के लिए तैयार नहीं थे। कभी अवैध संबंध रखते तो कभी गाँव छोडकर भाग जाते। गोपी के गाँव का पुजारी का एक विधवा के साथ अवैध संबंध था पकड़े जाने पर वह विधवा को लेकर भाग जाता है। आदि घटनाएँ इसका प्रतीक है।

गाँव में यातायात की सुविधाओं का अभाव भी दिखाई देता है। मटरू जेल से छूटने के बाद रास्ते में ही गोपी का गाँव होने के कारण उनके घरवालों को मिलाना चाहता है।

स्टेशन से मटरू का दीयर दस कोस पर था और गोपी का गाँव बीच में। याता–यात की सुविधाओं का अभाव होने के कारण वह गोपी के गाँव पैदल चलता गया और वहाँ से दीयर भी वह वैसा ही चलता गया। यहाँ अस्पताल की सुविधा का भी अभाव दिखाई देता है। जख्मी गोपी कोएक्सरे वगैरे आदी की सुविधा न होने के कारण उसे बनारस के जिला अस्पताल में भेजा जाता है। मटरू को भी उसके इलाज के लिए बनारस अस्पताल में लाया गया था।

गाँव के लोगों की अज्ञानता का कारण शिक्षा का अभाव और शिक्षा को महत्व न देना यही गाँव के लोग बचपन से ही लड़के को खेती के कामों में लगा देते है और लडकी को घर के कामों में। लेकिन अब धीरे–धीरे शिक्षा का प्रसार हो रहा है। शिक्षा के महत्व को गाँव के लोग भी समझ रहे हैं। मटरू खुद अज्ञानी, अनपढ़ होने के कारण जमींदार के कागजाद पढ़ नहीं सकता यह एहसास होने पर वह अपने लड़के को पढ़ने के लिए पाठशाला भेजता है। तो गोपी की भाभी भी बचपन में अपने भाई के साथ कुछ दिन पाठशाला जाती है लेकिन शिक्षा लेने का अधिकार जितना लडके को था उतना लडकी को नहीं इसी कारण कुछ ही दिनों के बाद उसकी पढाई खत्म की जाती है।

संस्कृति की दृष्टि से भी गाँव नगर से आगे होता है। गाँव में विवाह गीत, मिलन गीत, विरह का गीत, त्यौहार के गीत, धरती के गीत आदि कई प्रकार के गीत यहाँ गाये जाते है। गोपी के गाँव में विवाह एक उत्सव के रुप में मनाया जाता है, उस समय ब्याह के गीत भी गाए जाते है। तो मटरू को गाँव दीयर में स्त्रियाँ धरती के गीत गाती है। वह इसतरह का है –

"ए पिया, तू परदेस ना जा,
वहाँ तुझे क्या मिलेगा, क्या मिलेगा?
यहाँ खेत पक गये हैं, सोने की बालियाँ झूम रही हैं।
मैं हँसिया लेकर भिनसारे जाऊँगी,
खुश होकर वह नया अन्न देगा मैं फेंाड भरकर लाऊँगी।

× × × × × ×

वहाँ तुझे क्या मिलेगा, क्या मिलेगा ?"[47]

इसी तरह ग्रामीण जन–जीवन में लोककथा, लोकगीत का एक महत्वपूर्ण स्थान होता है।

'गंगा मैया' में भाषा की दृष्टि से उर्दू, फारसी, अंग्रेजी, ग्रामीण आदि शब्दों, मुहावरों, कहावतों, लोकोक्तियों, सूक्तियों, अलंकारों, लोकगीतों आदि का प्रयोग करके इस उपन्यास को ग्रामीण परिवेश के अंतर्गत लाने का प्रयास किया गया है। लेखक ने पात्रों की भाषा को परिष्कृत बनाया है। बीच–बीच में संवाद शैली का भी प्रयोग किया गया है, लेकिन ग्रामीण भाषा का सभी जगह परिष्कृत रूप नजर आता है। जैसे, छाती फूलना, चेहरा खुशी के मारे तमतमा उठना, अचरज का ठिकाना न रहना, साँप सूँघना चार चाँद लगाना, तहलका मचाना, न्यौछावर करना, कडवा घूँट पीना, मुहावरें तो लाठी भी न टूटे और साँप भी न मरे, एक पंथ, दो काज आदि मुहावरों और कहावतों के साथ सूक्तियों का भी प्रयोग हुआ है, जैसे,

1) दु:ख की चढ़ी नदी एक न एक दिन तो उतरेगी ही। (पृ. 22)

2) जमींदार की तहबील में पडे रुपयेकी वही हालत होती है, जो सर्प के मूँह में पडे चूहे की। (पृ. 30)

3) गुजरा जमाना फिर वापस नहीं आता। (पृ. 120)

सबसे जादा मुहावरों का प्रयोग लक्षित होता है। इसी के साथ–साथ फ्लैश बेंक शैली और स्वगत कथन द्वारा ग्राम जन–जीवन का चित्रण किया है।

<u>निष्कर्ष</u> :– भैरवप्रसाद गुप्तजी का 'गंगा मैया' एक प्रगतिवादी विचारधारा का आँचलिक उपन्यास है। यहाँ एक विशिष्ट अंचल को केंद्र में रखकर कथानक की रचना हुई है। गाँव में फैले हुए भ्रष्टाचार, अन्याय, शोषण, किसानों की दीनता, आपसी वैमनस्य, गाँव की स्थिति का चित्रण किया गया है। अंधकार, अंधविश्वास रूढ़ि परंपरा में अटका हुआ ग्राम–जीवन, जिसमें परिवर्तन करना बडा मुश्किल है फिर प्रगतीवादी विचारधारा के अनुसार इसमें परिवर्तन हो सकता है। सबसे महत्वपूर्ण इसमें यही है कि आपसी वैमनस्य के कारण गाँव में झगड़ा तो होता ही है

लेकिन उसके बाद होनेवाले परिणामों का सामना करना पडता है। उस पर भी प्रकाश डाला गया है। विधवा नारी की स्थिति कितनी भयावह होती है तथा अपने धर्म, रिवाज, जाति के कारण पुनर्विवाह नहीं होता तो उसकी मानसिक और सामाजिक स्थिति का चित्रण बडे अनूठे रूप से यहाँ हो गया है। साथ–ही साथ ग्राम जीवन में मनाये जानेवाले त्यौहार, लोकगीत आदि का भी सांस्कृतिकता की दृष्टि से निरूपण किया गया है। सभी दृष्टियों से यह उपन्यास ग्रामीण जीवन का दर्पण लगता है।

अवैध संबंध, विधवा स्थिति, किसानों की स्थिति, जमींदारों की मनमानी, खेती की स्थिति, किसानों की आर्थिक भयावहता, अंधविश्वास अज्ञान, अशिक्षा का प्रभाव और परिणाम आदि का प्रभावी चित्रण हुआ है। विधवा समस्या पर विधवा का पुनर्विवाह यही एक अहम उपाय यहाँ बताया है। विधवा भाभी का देवर से विवाह कराकर नई सामाजिक क्रांति यहाँ स्थापित की है एक सामाजिक दृष्टिकोण यहाँ स्पष्ट किया है। इस दृष्टि सेयह एक श्रेष्ठ सामाजिक रचना है – ऐसा मुझे लगता है।

## <u>बाबा बटेसरनाथ</u>

**– नागार्जुन**

हिन्दी के साहित्यकारों में नागार्जुन का एक विशिष्ट स्थान रहा है और इस विशिष्टता की दृष्टि से 'बाबा बटेसरनाथ' एक श्रेष्ठ उपन्यास (1954) है। जिसमें वृध्द वटवृक्ष 'रूपउली गाँव के' उत्थान–पतन, राजनीतिक, सामाजिक स्थितियों की कहानी कहता है। यह कहानी ग्रामीण जीवन के क्रमिक विकास की कहानी है। "नागार्जुन का लघुकाय 'बाबा बटेसरनाथ' बडी सफलता से आँचलिक जीवन एवं संस्कृति के विकास को लक्ष्य कर, उसकी प्रतिक्रियावादी तथा प्रगतिशील शक्तियों की पारस्परिक क्रिया–प्रतिक्रिया पर प्रकाश डालता है।"[48] इसके बारे में डॉ.जवाहर सिंह का कथन है – "नागार्जुन के 'बाबा बटेसरनाथ' में भी अतीतकालिक और वर्तमानकालिक वातावरण को चित्रित किया गया है। पुराना वह वृक्ष अपने अतीत अनुभव की

कहानी सुनाते हुए देशव्यापी स्वतंत्रता–आंदोलन के विकासेतिहास हा उल्लेख तत्कालीन वातावरण की पूरी प्रासंगिकता के साथ तो करता ही है, साथ–ही–साथ पूरी ऐतिहासिक प्रामाणिकता के साथ सन् 1906 ई. के अकाल, अंचल को तबाह करनेवाली भयंकर बाढ तथा उसके बाद फैली महामारी, जिलहे अंग्रेजों के द्वारा अंचलवासियों पर किये गये विभिन्न अत्याचार तथा शोषण सन 1921 ई. में हुए देशव्यापी विरोध प्रदर्शन, नमक कानून – भंग आदि का वर्णन भी तत्कालीन सामाजिक वातावरण के संदर्भ में करता है।"[49] एक सौ तीन वर्ष के वटवृक्ष के मानवीयकरण व्दारा नागार्जुन ने इस उपन्यास में एक नवीन कथा शिल्प का प्रयोग किया है। उपन्यास की मुख्य कथा जैकिसुन की स्वप्न कथा के रूप में वर्णित हुई है। यह स्वप्न कथा एक सौ तिरेपन पृष्ठ के उपन्यास में लगभग सौ पृष्ठों की रही है।

'बाबा बटेसरनाथ' सन 1942 के पश्चात की घटनाएँ जैकिसुन, दयानाथ, जीवनाथ आदि की वर्तमान कथा के रुप में प्रस्तुत की गई है। इस स्वप्न कथा को दो भाग में प्रस्तुत किया गया है। किन्तु इसमें उल्लेखित दीर्घ कथा पहली बार का बताया हुआ स्वप्न है तो दूसरा स्वप्न बटेसरनाथ के आशिर्वाद तथा भविष्य में अपने मरण की सूचना देने से ही खत्म होता है।

रूपउली में तीन सौ परिवार है, और आबादी लगभग ढ़ाई हजार है। उनकी आजीविका का मुख्य साधन खेती ही है। इसी इलाके में दस कोस के दरम्यान ही दो शुगर–फैक्टरियॉं, एक रेल्वे जंक्शन, खानदानी जमीदारों की सतगामा और परसादीपुर जैसी दो बडी बस्तियाँ, चार कोस पर दंरभंगा जैसा शहर, छः कोस पर मधुबनी कस्बा, एक मिडल स्कूल, संस्कृत की एक पाठशाळा, आधा कोस के फासले पर हाइस्कूल है। इसतरह रूपउली अपने आप में एक परिपूर्ण गाँव है।

यहाँ सभी जाति के लोग रहते है। इनमें ब्राह्मण, रजपूत, ग्वाले, अहीर, धानुक, मोमिन, चमार और पारसी परिवार भी है। इसमें ब्राह्मण, रजपूत की खेती है। ग्वालों और

मोमिनों के भी कुछ खेत है। लेकिन साठ प्रतिशत परिवार ऐसे है, जिनका गुजारा केवल मजदूरी पर निर्भर है। ऐसे लोग कई बार गाँव के बाहर, पडोस के गाँव में काम की तलाश में जाते है। गाँव के पच्चीस–पचास आदमी शहरों में कुलगिरी करके या और कोई छोटा–मोटा काम करके अपने परिवारों की जीविका चलाते हैं। गन्ने का मौसम आने पर पाँच–दस आदमी अस्थायी काम पा लेते हैं।

यहाँ के लोग मजबूत काठी के है। उनका रहन–सहन बिल्कुल सीधा–सादा है। मध्यम (मझली) और ऊँची हैसियतवाले मिर्जई, दुपलिया टोपी, चमरौधा जूता पहनते है। राजा, जमींदार, दीवान और राजपुरोहित – राजपंडित जैसे लोग छोटे लाट के दरबार में जाते तो चुस्त पाजामा, शेरवानी, पेचदार पगड़ी और दिल्लीवाले जूते पहनकर जाते है। यहाँ स्पष्ट है कि ग्रामवासियों का पेहराव सामान्य ही रहा है।

लेखक ने ईस्ट इंडिया कंपनी के समय को बडी खूबी से रेखांकित किया है। भारत में अंग्रेज व्यापारी आने से पहले भारतीय ग्राम समाज–व्यवस्था आत्मनिर्भर थी। लोगों का मुख्य पेशा खेती और घरेलू उद्योग था। लोग आपस में वस्तुओं का आदान–प्रदान कर कारोबार चलाते थें। अपनी जरूरत की सारी चीजें उन्हें अपने गाँव में प्राप्त होती थी। ग्राम समुदाय की मुख्य सामाजिक संस्थाएँ, परिवार, वर्ण, जाति–व्यवस्था और ग्रामपंचायत थीं। परिवारों पर ग्राम समुदाय और जाति व्यवस्था का नियंत्रण था। भारत में अंग्रेजों के आने से पूर्व भारतीय समाज पूर्णतः आत्मनिर्भर था लेकिन वह अंधविश्वास, रूढ़ि, परंपरा के आबध्द, अपरिवर्तनशील था। अंग्रेज व्यापार के उद्‌देश्य से भारत में आये और यहाँ के शासक बन गए। आर्थिक और राजनीति की दृष्टि से उन्होंने सारे अधिकार अपने हाथ में लिए। भारतीय ग्राम के घरेलू उद्योग बंद हो गए। मुख्यतः करघे और चर्खे को उन्होंने नष्ट कर दिया, लोग दरिद्री बने, जमींदार वर्ग निर्माण हुआ। भारतीय समाज शोषक और शोषित ऐसे दो वर्ग में विभाजित हो गया। जमींदार वर्ग किसानों का शोषण करने लगे। केवल जमींदार ही नहीं तो अंग्रेज भी भारतीय जनता पर निरंतर अत्याचार करते थे। भारत के शासन व्यवस्था में सबसे बड़े–बड़े अधिकारों के स्थानपर

अंग्रेज अधिकारी ही थे। इसका चित्रण करते हुए उपन्यासकार ने लिखा है – "ऊपर बडा लाट और छोटा लाट, सब गोरे साहब। सूबाई दफ्तर और हाईकोर्ट कलकत्ता में थे। इन देहातों में एक तरफ तो जमींदारों का दबदबा था, दूसरी तरफ कहीं–कहीं नील के कारखानेदार अंग्रेज जमे बैठे थे।"[50] बाजार का कारोबार देशी सौदागरों – तेली, सूँडी, कलबार, अगरबाला, रौनियार, बनरवाल, हलवाई के हाथों में था। जमींदार और सूखी किसान सूद पर कर्ज देते थे। अंग्रेजों ने व्यापार की दृष्टि से रेल्वे–लाईन शुरू कर दी थी।

जमींदारी प्रथा के कारण किसान, मजदूर वर्ग का शोषण होने लगा। गरीब किसान आजीवन कर्ज में डूबा रहता था। शत्रुमर्दनराय इन्हीं जमींदार के अत्याचार का शिकार हो गया। शत्रुमर्दनराय के पिता ने जमींदार से तीस रूपये सूद पर लिये थे। अपनी जिंदगी में वह कर्ज की रकम नहीं चुका सका और कर्ज की रकम चालीस रूपये हो गई। जमींदार ने शत्रुमर्दन को बडी बर्बरता से मार डाला। पहले तो उसपर लाल चींटे छोडी गई और उपर से कोडे बरसाए। इसका वर्णन देखिए – "चींटे हजारों की तादाद में शत्रुमर्दन राय की देह पर फैल गए। माथा हिलाकर बेचारे ने बँधे हाथों को ऊपर–ऊपर झटकने की कोशिश की कि पीठ पर कोडे पड़े सपाक्–सपाक्। चार बार।।"[51] यह घटना जमीदारों व्दारा होनेवाले अत्याचारों, बर्बरता का उदाहरण है। जमींदारों की विलासिता और मनोरंजन का शानदार महल गरीबों के खून व पसीने से सींचा जाता है। जमींदारों के यहाँ विवाह होते, तीज–त्यौहार होते, गाने–बजाने होते। इन सब प्रसन्नताओं के पीछे गरीब जनसाधारण का न जाने कितना खून–पसीना बहा करता है। जमींदार के बेटे के विवाह पर बेगार लेने का एकही उदाहरण रोंगटे खड़े करने के लिए काफी है। एक बार जमींदार के लड़के के विवाह में "कन्धों, पर बाँस रखकर सोलह बेगारी भारी–सी एक तख्तपोश ढोए जा रहे थे, उस पर दरी और जाजिम बिछी थी। मय साज–बाज के एक रंडी उस तख्तपोश पर नाच रही थी – तबला – डुग्गी, सारंगी, मजीरा सब साथ दे रहे थे। "... बरात में साथ चलते बेगारों के कन्धे । कन्धों पर बाँस और बाँसों पर तख्तपोश । तख्तपोश पर साज–समेत एक बाईजी नाच रही हैं और राजा बेटा ब्याह करने जा रहा है।"[52]

इसप्रकार बेगार रूप में जनसाधारण का शोषण होता था। बेगार लेना जमींदार अपना जन्म–सिध्द अधिकार मानते थे। यह सौ वर्ष पूर्व की कहानी थी, लेकिन अब जमींदारी उन्मूलन प्रारंभ होने पर जमींदार सार्वजनिक उपयोग की भूमियों को धीरे–धीरे बेचने लगे। लोभी किसान टुनाई पाठक और जैनरायन झा ने राजाबहादुर से बरगदवाली भूमि और पोखर की बंदोबस्ती ले ली थी। वह बरगद को कटवाना चाहते थे। दरभंगा के महाराजा, दरबारियों और अफसरों की सौगात स्वरुप फल भेजने की अपेक्षा बेचकर लाभ कमाने लगे। बाबा बटेसरनाथ कहते है – "जाते–जाते भी ये राजा, जमींदार भू- स्वामी, सामन्त चांदी काट रहे है। घोडे की किमत पर वे हाथी हटा रहे हैं, बछडे की कीमत पर घोडा, और बछड़ा?" अंग्रेज किसानों को तीन–कठ्ठा भूमि में नील की खेती करने के लिए विवश करते थे। सलाम न करने पर जैकिसुन के दादा को हंटरों की बौछार सहनी पडी थी। लालची जमींदार अपने फायदे के लिए एक गूँगे चमार की भी हत्या कर देते है। अतः आजादी के बाद भी जमींदारों व्दारा होने वाला शोषण नहीं रूक सका। भ्रष्ट, लालची जमींदार विभिन्न हथकंडे अपनाकर अपनी कार्यपूर्ति किस तरह करते थे इसका एक उदाहरण बरगदवाली जमीन बेचना ही है। जिससे उनकी नीति स्पष्ट होती है। इस बारें में डॉ.जवाहर सिंह का कथन है – "बाबा बटेसरनाथ की कथा किसी व्यक्ति की नहीं, पूरे शोषित पीड़ित वर्ग की है, "कम्युनिस्ट – प्रभावित गांव' की है, जो देश की आजादी के पूर्व शोषक अंग्रेजी सत्ता के विरूध्द अपने अधिकारों के लिए संघर्षरत था और आजादी के बाद भी देशी शोषकों–अत्याचारियों, जमींदारों, पूँजीपतियों, भ्रष्ट सरकारी अफसरों और जन–सेवा के बहाने अपना स्वार्थ साधने वाले शासक पार्टी के नेताओं के विरूध्द संघर्षरत है।"[53]

ग्राम विकास में प्रकृति का सहयोग महत्वपूर्ण रहता है तथा प्राकृतिक आपदाओं के कारण ग्राम विकास में रोडे अटकाए जाते है जिसका चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में हुआ है। प्राकृतिक विपत्तियों के कारण ग्राम–जीवन तहस–नहस होता है। अकाल, बाढ जैसे प्राकृतिक विपत्तियों से विशेष रूप में किसानों का जीवन तबाह हो जाता है। लोगों का निर्वाह खेती पर चलता था।

अतः जब खेती चौपट हो जाती तो लोग भूखे मर जाते। इसका वर्णन देखिए – "मामूली हैसियत के किसान शकरकंद बनाम अल्हुआ की शरण ले चुके थे। खेत–मजदूर और जन–बनिहार आम की सूखी गुठलियाँ चूर–चूरकर महुआ का जरासा आटा उसमें मिलाकर टिक्कड़ बनाते और उसी से भूख की आँच को शान्त करते।"[54] तालाब का पानी कम होने लगा। लोग मछली और कछुओं पर टूट पडे। परिस्थिति इतनी भयावह हो गई कि लोग ईटों का चूरन, पेड के पत्ते, छाल, आम की गुठलियाँ खाने लगे। देश का समूचा पूर्वी हिस्सा भूखमरी की चपेट में आ गया था। जिसमें हजारों परिवार बरबाद हो गए और लाखों की जान चली गई। रोनेवालों के पास आँसु नहीं थे। लाशों का बहुत ही बुरा हाला था। उन्हें मैदान में फेंकने लगे। "गीधें, कौओं और कुत्तों का आपसी वैर भाव इसलिए खतम हो गया था कि लाशों की कमी नहीं थी। मनुष्यों और पशुओं के कंकाल गाँव के बाहर इधर–उधर फैले दिखाई देने लगे...।"[55] अकाल के समान बाढ के अवसर पर भी लोगों की स्थिति भयावह हो गई थी। जीबछ नदी को भयानक बाढ़ आने से समूचा इलाका पन्द्रह दिन तक पानी में था। फसले डूब गई, मैदान समुद्र बन गए। लोग बरबाद पर रहने लगे। मामूली किसान चावल को क्या, जलावन के अभाव में खेसाड़ी और मसूर के दाने भिगो–भिगो पर चबाया करते। इसी तरह बीच–बीच में भूचाल भी आता है। बरगद के पेड़ को भी इसी भूचाल ने गिरा दिया था। इसीकारण वह पेड़ टेढ़ा हो गया था। बाबा बटेसरनाथ कहता है – "वह दुर्घटना मेरी तन्दुरूस्ती को पी गई और हमेशा के लिए मुझे अपाहित बना गई।" प्राकृतिक आपदाओं से ग्रस्त देहाती जन–जीवन की विभिन्न झाँकियाँ उपन्यासकार ने प्रभावी ढंग से चित्रित की है। ग्राम विकास में यही बडी बाधाएँ बनी है। जिससे पूरा ग्रामजीवन विनाश की कगार पर खड़ा है। इसपर भी उपन्यासकार ने प्रकाश डाला है।

रूपउली के ग्राम जीवन में अशिक्षा और अज्ञान के कारण कई प्रथाएँ थी, जिसके कारण समाज जीवन खोखला बन गया था। ईश्वरपूजा के समान लोग वृक्षपूजा और वृक्षों पर निवास करनेवाले ब्रह्मबाबा की भी पूजा करते थे। सभी बरगद के पेड की पूजा करते है।

सोमवार और बुधवार के दिन प्रातःकाल स्त्रियाँ आकर बरगद की वेदी पर चावल की पीठी के घोड़े खडे करती, पिण्डियों पर दूध ढालती, अच्छत, फूल चढातीं, परिवार की भलाई के लिए मिन्नतें मांगती थी। किसी के घर कोई शुभकार्य होता तो पाठक बाबा का पूजन अवश्य कर लेते। मनोरथ पूरा होने पर लोग आकर धूमधाम से मनौतियाँ चढाते। बारह महीनों में बीस–पच्चीस बकरे भी. बलि चढाते है। प्रारंभ में लोग बरगद के पेड की छाया में आकर विश्राम करते थे लेकिन ब्रह्मबाबा की स्थापना होते ही बरगद के प्रति सभी की भावना बदल गई और वे दूर भागने लगे। अपनी व्यथा को बटेसरनाथ कहता है – "जब लोग मुझे स्नेह और प्यार की निगाहों से नहीं, आदर और श्रध्दा की निगाहों से देखने लगे। ... श्रध्दा, भक्ति, भय और आतंक .... अब मैं प्रिय नहीं था, पूजनीय था – वन्दनीय और माननीय था।' [56] ये सभी प्रथाएँ ग्रामवासियों की मानसिकता को दर्शाती है। जिसमें उनका अज्ञान, धार्मिकता, श्रध्दाभाव रहा है। यहाँ स्पष्ट है जो बरगद प्रारंभ में सभी को प्रिय था लेकिन जब वह ब्रह्मा बना तो लोग डर से जानने लगे। इससे यह स्पष्ट होता है धर्म के कारण ग्रामवासियों में 'डर' का भाव बढता ही है।

रूढ़िग्रस्तता के साथ–साथ अनेक परंपराएँ भी प्रचलित है। परंपरा के अनुसार स्त्रियाँ अपना शरीर गुदनों से सजाती है। जैकिसुन की परदादी का समूचा बदन गुदनों से भरा था। उसकी माँ के बदन पर भी गुदना के दो–तीन निशान थे। बाबा बटेसरनाथ के शरीर पर लडके विविध चित्र बनाते, जी परंपरागत संस्कृति के प्रतीक थे। इसमें पंछी प्राणियों से लेकर मानव–जीवन की अभिव्यक्ति की जाती, जिससे तत्कालीन लोक परंपरा और संस्कृति के दर्शन होते है। शरीर गोदना एक प्राचीन प्रथा है, जिसका यहाँ निर्वाह होता है ऐसा लगता है, इसमें श्रृंगार की भावना भी छिपी है।

अज्ञान के कारण औलिया, ओझा–गुनी, साधु–सन्त, ज्योतिषी मध्दू आदि अपने विवाह के बारेमें पूछता। तो जैकिसुन की दादी अकाल के बारे में अपने पति से कहती है, "देखते हो न? इस बार फागुन में ही कैसी मनहूसी छा गई हैं। रात को काला कौआ चीखता रहता है

कई कई । दिन के समय गीदड़ हुआँ–हुआँ करता है .... अब के भरी अकाल पडेगा, देख लेना।"[57] शकुन–अपशकुन का संबंध भविष्यत् की घटना से जोडने की एक मानसिकता यहाँ बनी है ऐसा भी दिखाई देता है, जो अज्ञान का प्रतीक है। भविष्य पर पूछना, विवाह के लिए बलि चढाना आदि के पीछे अप्रगत दृष्टिकोण ही रहा है।

यहाँ के लोगों में धार्मिकता भी अधिक दिखाई देती है। धर्म के साथ इनके धार्मिक अंधविश्वास जुड़े है। बारिश न होने के कारण वे अनेक देवी–देवताओं की उपासना करते हैं फिर भी बारिश नहीं होती। बरगद पेड के नीचे रूपउली के ब्राह्मण मिट्टी के ग्यारह लाख शिवलिंग बनाते है ओर सामूहिक रूप से पूजा भी करते है फिर भी कोई फायदा नहीं होता। यहाँ की औरतें बारिश होने के लिए रात में मेंढक पकड़ लाते है और मूसलों में कूचल डालती है। उपन्यासकार ने लिखा है – ग्वाले, अहीर, धानुक, भुइयाँ महाराज का पूजन किया, दस भेंडे बलि चढाई और दो जवान खेलते–खेलते लहू–लुहान हो गए फिर राजा इंद्र खुश नहीं हुआ। पंडितों ने महिनों तक चंडी पाठ किए, साधकों ने एक–एक मंत्र को लाखों जपा लेकिन अंत तक बारिश नहीं हुई।[58] अंधश्रध्दा के कारण लोग बीमारी में सरकारी अस्पताल में जाकर दवा भी नहीं लेते थे। लहेरियासराय में सरकार की ओर से एक अस्पताल खोला गया था, परन्तु पंडितों के कारण दवा लेने के लिए कोई भी तैयार नहीं था। क्योंकि पंडित पुरोहित अपना लाभ उठाना चाहते थे। उनका प्रचार था कि .... शहरों के अन्दर ये जो अस्पताल खुल रहे हैं वे हिन्दुओं को भ्रष्ट करने के खिस्टानी कारखाने है .... गोमांस का अर्क, सूअर का लहू, विष्ठा का सत, आदमी की खोपडी का गूदा विलायत से दवाएँ तैयार होकर आती हैं ... जोर की अफवाहे फैली हुई थी डाक्टरी दवाओं के खिलाफ।" ये अंधविश्वासी लोग अपनी इच्छापूर्ति के लिए पशु बलि देते, बारह महीनों में बीस–पच्चीस बलि चढते थे। "पंडित यजमान से पहले तो बकरे की पूजा करवाता, फिर हथियार की। पीछे पंडित के अनुसार यजमान दोनों हाथ जोड़कर बकरे से कहता –

"यज्ञ के निमित्त पशुओं की सृष्टि की विधाता ने
यज्ञ के निमित्त ही उन्हें मार गिराया जाता है
इसीकारण मै तुम्हें मरवाऊँगा
यज्ञ की हिंसा हिंसा नहीं हुआ करती ..."[59]

यहाँ स्पष्ट है यज्ञा जैसे धार्मिक संस्कार पर होनेवाली बलि को वे हिंसा न मानकर भगवान यहाँ की कृपा मानते है। धर्म के बारे में देवेश ठाकुर का कथन है – "धर्म चाहे किसी भी जाति और देश का हो, मूलतः मानवीयता के उदात्त आदर्शो का प्रवक्ता होता है लेकिन जब धर्म कुछ निढ़ल्ले, स्वार्थी और हीन–प्रवृत्तिवाले व्यक्तियों द्वारा एक व्यवसाय के रूप में अपना लिया जाता है, तब उसकी उदात्त भावना का तिरोहरण हो जाता है और उसकी आड़ में अनेक विसंगतियाँ पनपने लगती है। भारतीय समाज में बहुत से धर्म का इसी प्रकार व्यवसाय होता आया है।"[60]

समाज में तीर्थाटन की पध्दति भी प्रचलित थी। याता–यात के साधन नहीं थे फिर भी गाँव के दस–बारह लोग जोट बाँधकर तीर्थाटन के लिए जाते थे। परदादा राउत चैत में वारूणी के परब में लोगों के साथ पैदल गये थे। बाबूसाहब देवीदत्त सिंह ने चारों धाम की यात्रा की, तो टहलुआ के तौर पर जानू राउत उनके साथ गया था। परादादा राउत ने बरगद के पौधे को लगाते समय पुत्र– जन्म – सा उत्सव मनाया था। सौ साल पूर्व यहाँ याता–यात के साधन हो होने के कारण लोग याता–यात के लिए हाथी,घोडा, बैलगाडी, पालकी–तामदान, इक्का और खटोला आदि की मदद लेते थे। तीर्थटन में, उत्सव में सामूहिकता दिखाई देती है, जो आज भी ग्राम जीवन की विशेषता बनी रही है।

यहाँ का नारी जीवन सामान्य ही दिखाई देता है क्योंकि बाबा बटेसरनाथ में नारी पात्रों की अपेक्षा पुरूष पात्रों की अधिक भरमार हुई है। नारी पात्र के रूप में परदादी, दादी तथा जैकिसुन की माँ का नाममात्र उल्लेख आया है। परदादी और दादी के काल की एक घटना से शोषित नारी जीवन स्पष्ट होता है। परदादी के समय में एक बडे घरकी लड़की, जो

बाल–विधवा बन चुकी थी वह एक चरवाहें से प्यार करती थी उसने अपना तन–मन उसपर निछावर कर दिया था, लेकिन यह बात लब लड़की के घरवालों को मालूम हुई तब वे चरवाहे का कत्ल कर दते है। दूसरे दिन वह लडकी तालाब में खुदखुशी कर देती है। इसीसे यही स्पष्ट होता है कि वहाँ, जाति के बंधन कडे थे और विधवा का पुनर्विवाह करना पा समझा जाता था। नारी विवाह के मामले में स्वतंत्र नहीं थी तो विधवा का जीवन मृत्यु से भी बदत्तर था उसे खुदखुशी करने के लिए विवश होना पडता था। यह नारी स्थिति का एक अच्छा उदाहरण है।

रूपउली गाँव में स्वतंत्रता के बाद शिक्षा के प्रति जागरूकता निर्माण हो गई है। लोग धीरे–धीरे शिक्षा का महत्व समझने लगे है। गाँव में पाठशाला भी है, लेकिन उच्च्व शिक्षा तक बडे बाबूओं के ही लडके पहुँचते है। मध्यम और सामान्य वर्ग के लोग सिर्फ पढ़ना–लिखना तक जानते है। यहाँ ऊँची डिग्री पानेवाले भी कुछ कम नहीं लेकिन यह डिग्री केवल वह अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए ही इस्तेमाल करते है। वे सभी जमींदारों के बेटे है। टुनाई पाठक का लडका एम.ए. और वकालत का इम्तिहान पास करके ससुर जज की सिफारिश से इन्कमटैक्स का जिला अधिकारी हो गया था। जैनरायन का बेटा लोको इंजीनियरिंग की ऊँची डिग्री पाकर जमालपूर के रेल्वे वर्कशाप में चार सौ की तनख्वाह पर लग चुका था। गाँव में दो वकील, दो प्रोफेसर, एक डिप्टी मॅजिस्ट्रेट, एक फॅारेस्ट ऑफिसर इसी तरह आठ सपूद बड़े औहदे पर पहुँचे थे।"[61] यहाँ स्पष्ट है शिक्षा सीमित परिवार तक ही रही है। इसके बारें में अर्जुन घरत का कथन है – "उपन्यासकार नागार्जुन के अनुसार विद्या सिर्फ धन से प्राप्त नहीं होती, वे शिक्षा का लाभ विशिष्ट वर्ग तक सीमित रखने की प्रवृत्ति का विरोध करते है और मानव जाति की सामूहिक प्रगति के लिए शिक्षा आवश्यक मानते है।"[62]

स्वतंत्रता के बाद रूपउली की स्थिति में परिवर्तन दिखाई देता है। शिक्षा का विरोध प्रचार बढ़ जाने के कारण अंधविश्वास और रूढ़िपरंपरा कम हो गई। भूत–पिशाच्च, मनौतियाँ, बलिप्रथा कम हो गई। लोग राजनीतिक और सामाजिक चेतना के प्रति अधिक जागृत हो गये।

लेकिन साथ–ही–साथ भ्रष्टाचार जैसी दुष्प्रवृत्ति आ गई। अंग्रेजी राज की विरासत में कँाग्रेस को भ्रष्टाचार की देन मिली। कँाग्रेसी नेता, पुलिस अधिकारी, सरकारी अधिकारी भ्रष्टाचार का केंद्र बन गये। शासन के नाम पर ये सब अधिकारी गरीब जनता का शोषण करने लगे, उनपर अत्याचार करने लगे। इसके विरोध में आवाज उठाने का कार्य जैकिसुन और उसके साथियों ने किया। जब राजा बहादुर कृष्णदत्त सिंह के घर डकैती पड गई तब पाठक और जैनरायन चोरों को छोडकर जैकिसुन को फँसाना चाहते है। यहाँ स्पष्ट है अंग्रेजनिष्ठ जमींदार आजादी के आंदोलन में क्रंातिकारों पर झूठे इल्जाम थोंपकर अपनी निष्ठा दिखाते थे। पाठक, जैनरायन इसके प्रतीक है। आजादी के बाद सामान्य व्यक्ति का जीना मुश्किल हो गया। जमींदार, साहुकार, पूँजिपति तथा सरकारी अधिकारी नए–नए हथकंडे अपनाकर गरीबों को फँसाना चाहते है। पाठक इसका उदाहरण है। पाठक ने डेढ़ सौ रुपये देकर गूँगे चमार की हत्या करवादी और इल्जाम जैकिसुन तथा उसके साथियों पर लगाया। कुछ दिन जैकिसुन और उसके साथियों को जेल पडता है, लेकिन छुटने पर वे दुगुने जोर से गाँव की तरक्की करते है। गाँव के विकास के लिए तथा जुल्मों का प्रतिकार करने के लिए गाँव–गाँव में किसान तथा ग्राम कमेटियों की स्थापना की जाती है। किसान सभा की स्थापना एक प्रगतिवादी विचारधारा का प्रतीक है तो पाठक ग्रामविकास में रूकावट डालने की प्रवृत्ति का उदाहरण है। आजादी के बाद इन दो प्रवृत्तियों में संघर्ष चला है। जिसे कारण ग्राम विकास का सपना 'सपना' ही रहा है। उपन्यासकार ने उस पर प्रकाश डाला है। रूपउली के नब्बे प्रतिशत लोगों का बरगदवाली जमीन तथ पुरानी पोखर के संघर्ष से संबंध था। इसके बारे में फैसला सरकार के ऊपर सौपा गया। लोगों में आया हुआ परिवर्तन देखकर जमींदार, सत्ताधीश चिन्तित हो गए और उन्होंने कँाग्रेस के विरोधी लोगों को सरकारी सहायता देने से इन्कार किया। रूपउली के किसानों 'लघु सिंचाई योजना' के अंतर्गत सरकारी मदद नहीं मिलती क्योंकि रूपउली 'कम्युनिस्ट प्रभावित गाँव' माना गया था। फिर भी किसानों ने अपना संघर्ष पीछे नहीं लिया। वे किसान नागार्जुन के विचारों के प्रतिनिधि है। पहले रूपउली में जाति बंधन कडे थे। ऊँची जाति के लोगों ने अपने स्वार्थ के लिए इसका उपयोग किया, जिसके कारण समाज में छुआछूत, अस्पृश्यता की समस्या

निर्माण हो गई थी। परंतु शिक्षा के प्रभाव से ये जाति बंधन धीरे-धीरे टूटने लगे। पुरानी पोखर की रक्षा के लिए रूपडली में सभी जाति के लोग इकठ्ठे हो जाते है। लोग-संगठन के कारण जमींदार कुछ नहीं कर पाते। जातीयता और धर्म के बंधन टूटने लगे। श्रावणी पूर्णिमा के दिन हाजी करीमबक्स की कलाई पर भी किसी ने राखी बाँध दी थी। वह गुनगुना रहे थे–

"सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा

हम बुलबुले है इसकी ये गुलिस्ताँ हमारा।।"

लोग संगठन तथा किसान संगठन के कारण उन्हें अपने अधिकार मिल गए थे। यहाँ एकता की शक्ति का परिचय मिलता है।

नागार्जुन ने 'बाबा बटेसरनाथ' में मिथिला अंचल की संस्कृति को समग्रता से उभारने के लिए लोकगीत एवं लोककथओं का भी प्रयोग किया है। लोक कहानी के रूप में दुसाधों के वीर पुरूष महाराज सल्हेस और उसकी प्रेयसी कुसुम दोनों की कहानी मिलती है। इस प्रेमकथा को लेकर मिथिलांचल में एक लोकगीत प्रचलित हैं –

"उमर बीत गई, बाल पकने लग गए

.... ओ निठुर । निर्मोही ।।"[63]

ऐसे लोकगीत, लोककथा ग्रामीण जीवन की सांस्कृतिक धरोहर मानी जाती है।

नागार्जुन ने अपने 'बाबा बटेसरनाथ' उपन्यास में इसीतरह ग्रामीण जन-जीवन का चित्र रेखांकित किया है। उपन्यास में नागार्जुन ने भाषा की दृष्टि से एक नई एक नई तकनीक का प्रयोग किया है। एक वृक्ष को प्रमुख पात्र के रूप में चित्रित करते हुए उसके व्दारा अतीत का इतिहास, वर्तमान की स्थिति और भविष्य के संकेत दिये गये है। इसमें तत्सम, तद्भव और देशज शब्दों का स्वाभाविक रूप से प्रयोग किया है। अरबी – उर्दू, अंग्रेजी के शब्द भी मात्रा में पाये जाते है। इसमें सर्वथा परिमार्जित हिन्दी का प्रयोग किया है। साथ-ही-साथ मुहावरे, कहावतें तथा सूक्तियों का भी प्रयोग इसमें सजीवता और सरलता लाता है। 'बाबा बटेसरनाथ'

में तत्सम शब्द कतिपय है, जैसे पीताभ, महर्षी, वज्रपात, स्वर्णित, नीलांबर, आत्म–शुध्दि आदि। तद्भव शब्द दुपहर, दाहिना, अमावस, तँबा आदि, अरबी – उर्दू शब्द – कम्बख्त, मुताबिक, सिफारिश, तनख्वाह, इतमीनान, परेशानी, हरारत, गजब, सरेआम, जुल्म, तसल्ली, जायदाद, मुकदमा, बुजुर्ग आदि, अंगेजी शब्द – डिप्टी–मॅजिस्ट्रेट, प्रोफेसर, फॅारेस्ट–ऑफीसर, लोको इंजीनियर, इन्कमटैक्स, रेल्वे वर्कशॉप, पुलिस–सुपरिटेण्डेट, हाई–कोर्ट आदि है। मुहावरें, कहावतें और सूक्तियों का प्रयोग भी इसमें रोचकता प्रदान करता है। जैसे, 'भागते भूत की लंगोटी भली', 'आपबीती भी तो जगबीती का ही अंश होता है', बंभोला को आकधतूर , बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय, साँप के बिल में हाथ डालना, मसें भीगना, एक से दो भला, कलेजा टुक–टुक होना आदि कई से भाषा सुशोभित हुई है। इसकी शैली आत्मनिवेदनात्मक और फ्लैश बैक भी है। संवाद पात्रानुकूल एवं विषयानुकूल है। इसीकारण उपन्यास की भाषा सजीव प्रतीत होती है। उपन्यासकार नागार्जुन की शैली में नवीनता और विविधता पाई जाती है। उनकी शैली सरल, सुबोध और सुगठित है। भावनाओं की तीव्र अभिव्यक्ति के समय भाषा कुछ अलंकृत और व्यंग्यात्मक बन गई है। अलंकारों का प्रयोग चमत्कार प्रदर्शन के लिए न होकर भावाभिव्यक्ति में सहायक रूप में हुआ है। "नागार्जुन की कथा भाषा का अपना अलग अंदाज है। सामान्यत: वह निखालिस भदेसी भाषा है। अपनी वर्णन प्रणाली में वे अत्यंत सहज है।"[64]

निष्कर्ष :– नागार्जुन का 'बाबा बटेसरनाथ' प्रगतिवादी विचारधारा से प्रभावित उपन्यास है। इसकी रचना अंचल विशेष के पात्रों और घटनाओं को लेकर की गई है। शिल्प की दृष्टि से यह अलग शैली का उपन्यास है क्योंकि यहाँ बरगद का मानवीकरण और मनुष्य की भाषा में बोलना सर्वथा नया है। पूरे उपन्यास में बटेसरनाथ का व्यक्तित्व छाया हुआ दिखाई देता है, जो नई पीढ़ी के लिए, मौजुदा संघर्ष के लिए प्रेरणा देता है। इस उपन्यास में ग्रामीण लोकजीवन के संपूर्णता से दर्शन होते है। रूपउली के लोग अशिक्षित, रूढ़िग्रस्त, समाज की धर्ममार्तण्डों के जाल में अटके हुए, जमींदार और अंग्रेजों के अन्याय, शोषण, अत्याचार में फँसे हुए ये लोग

अपने रूढ़ि परंपरा और अंधविश्वास को गले लगाकर जी रहे है। इसीकारण जमींदार इनका शोषण करने में कामयाब होते है। प्रगतिशील विचारधारा से प्रभावित जैकिसुन जीवनाथ लोगों में जागृति निर्माण करता है। तभी वर्गसंघर्ष का आरंभ होता है। जातीयता को भूलकर सब लोग संगठित होकर अपने हक के लिए लडते है। आखिर में उनकी ही जीत होती है। एकता की शक्ति कितनी महान होती है यह उससे स्पष्ट होता है। राजनीति की दृष्टि से भ्रष्ट नेता लोग केवल अपने स्वार्थ के लिए अपने पद का उपयोग करते है। आजादी मिलने पर भी गाँव के लोग भ्रष्ट नेताओं के कारण आजाद नहीं हो पाते। लेकिन किसान, मजदूर अपनी प्रगति का मार्ग खुद चुनते है, अपना अधिकार एकता से प्राप्त कर लेते है। शिक्षा के प्रसार के कारण जातीयता, अंधविश्वास, रूढ़ि–परंपरा के बंधन कम हो रहे है। एक नई दिशा की ओर लोग बढ रहे हैं। उपन्यासकार का उद्‌देश्य भी यही है। समाज सुधारवादी दृष्टिकोण को यहाँ अपनाया गया है। लेखक खुद मार्क्स वाद से प्रभावित है। लेखक जिस क्रांति को चाहता था। उसकी सूचकता "कम्युनिस्ट प्रभावित गाँव" की विजय में दिखाई देती है। साम्यवाद, नए समाज की निर्मिती, सर्वहारा वर्ग के प्रति प्रेम तथा क्रांति की भावना, समाजसुधारवादी दृष्टिाकोण के कारण "बाबा बटेसरनाथ" को हिन्दी साहित्य में एक विशिष्ट स्थान प्राप्त हुआ है। अंचल के लोकजीवन को संपूर्णतः स्पष्ट करने का प्रयास इस उपन्यास में हुआ है इसीकारण यहाँ ग्राम जन–जीवन का अनूठा रेखांकन प्रस्तुत हुआ है।

आजादी का आंदोलन, ग्रामवासियों में देशभक्ति, पेडों के प्रति आत्मीयता, भगवान पर भरोसा, सामूहिकता, गांधी विचारों से प्रभावित ग्रामवासी, असहयोग आंदोलन, आजाद भारत तथा सरकार की सुधारनीति, विकसित गाँव आदि गई बातों का चित्रण उपन्यासकार ने किया है। बटेसरनाथ रूपउली गाँव का जीता–जागता इतिहास है, ऐसा कहना अनुचित नहीं होगा।

## मैला आँचल

फणीश्वरनाथ 'रेणु'

फणीश्वरनाथ रेणु का 'मैला आँचल' (1954) एक नयी विधा का नाम लेकर प्रकाशित हुआ। इसी के आधारपर हिन्दी में 'आँचलिक उपन्यास' विधा का नामकरण हुआ। यह हिन्दी का प्रथम श्रेष्ठ आँचलिक उपन्यास माना जा सकता है। इस कथावस्तु की विशेषता व्यक्ति विशिष्ट न होकर एक परिवेश की विशिष्टता है। इस उपन्यास का कथानक पूर्णिया अंचल के जन–जीवन पर आधारित है। उपन्यास क्षेत्र को एक सीमित दायरे में खडा किया गया है। इसकी भूमिका में रेणुजी का कथन है – "यह मैला आँचल, एक आँचलिक उपन्यास। कथानक है पूर्णिया। पूर्णिया बिहार राज्य का एक जिला है, इसके एक ओर है नेपाल, दूसरी ओर पाकिस्तान और पश्चिम बंगाल।' रेणु की कृति में सर्वांगीणता के साथ ही आँचलिक वातावरण का विशद चित्रण भी है। प्रेमचन्द के गोदान तथा नागार्जुन की कृतियों की परंपरा में होते हुए भी 'रेणु' का 'मैला आँचल' श्रेष्ठ मौलिक कलाकृति है। रेणु ने मेरीगंज का ग्राम–जीवन चित्रित किया है। उन्होंने अपनी भूमिका में ही स्पष्ट किया है मेरीगंज यह एक पिछड़े गाँव का प्रतीक है।

कथानक को उपन्यासकार ने दो खण्डों में विभाजित किया है। प्रथम खण्ड स्वतंत्रता से पूर्व की कथा बताता है, तो द्वितीय में स्वातंत्र्योत्तर कालीन समाज का चित्रण है। रेणु का उद्देश्य मेरीगंज पूर्णिया के जन–जीवन का समग्र, सजीव चित्रण करना है। प्रधान कथासूत्र के साथ–साथ प्रासंगिक कथासूत्र भी इसमें विकसित हुआ है। 'रेणु' जी खुद अपने कथन में कहते हैं – "इसमें फूलभी हैं, शूल भी हैं, धूल भी हैं, गुलाल भी, कीचड़ भी है, चन्दन भी, सुन्दरता भी है, कुरूपता भी – मैं किसी से भी दामन बचाकर निकल नहीं पाया। मैला आँचल में मेरीगंज का परिवेश, समाज–जीवन, मान्यताएँ, संस्कार प्रभावी ढंग से चित्रित हुआ है। यह आँचल अपनी कहानी बताता है। ऐसा लगता है। इस बारे में सुरेंद्रप्रताप यादव कहते है – "मैला आँचल मेरीगंज जीवन में व्याप्त, वस्तुतः जनजीवन की मैली जिन्दगी की

बहुरंगी दृश्यावली का एक दर्पण है। इसमें ग्रामीण जीवन की आर्थिक विवशता, इस विवशता के कारण अनैतिक संबंध, कहीं–कहीं सामान्य रुप में ऐसे संबंधों की व्यावहारिक परिणति, मठों के अधिपति, जिन्हें और श्रध्दा के भाव से देखा जाता है, उनकी कामपिपासा, अज्ञान के अंधकार में भटकती हुई गाँवों की गतिविधि, संस्कारों के विकास के विविध आयाम, भूत–प्रेतों के प्रति लोगों की अवधारणा आदि के सजीव एवं प्रभावपूर्ण चित्रण के व्दारा लेखक ने पूर्णिया जिले के एक गाँव के जीवन की यथार्थ झाँकी प्रस्तुत की है।"[65]

मेरीगंज गाँव के नाम का अपना एक इतिहास है। बहुत वर्ष पहले नीलहा साहब मार्टिन जब यहाँ आकर बसार था, तब उसने अपनी नवविवाहिता पत्नी मेरी के नाम पर इस गाँव का नाम मेरीगंज रखा। गाँव का पुराना नाम किसी को भी मालूम नहीं क्योंकि एक बार किसी किसान के मुँह से इसका पुराना नाम निकल जाने पर मार्टिन ने उसे कोडों से पिटा था। तब से किसी ने भी पुराना नाम लेने का साहस नहीं किया। मेरी को यहाँ आने पर, केवल एक सप्ताह में ही मलेरिया बुखार ने पछाड़ लिया और इलाज की सुविधा के अभाव में उसकी मृत्यु हो गई। तब से मार्टिन ने मेरीगंज के लिए छोटी–सी डिस्पेन्सरी की मंजुरी के लिए दिन–रात मेहनत ली। उसे एक वर्ष में यह सुविधा हो जाएगी यह आश्वासन मिला। लेकिन उसी समय जर्मनी के वैज्ञानिकों को कायले से नील बनाने की विधि ज्ञात हो गई उसी के साथ ही नील युग का अन्त हुआ। परिणामतः नीलहे साहब और मार्टिन भी उजड़ गया। अंत में मार्टिन पागल हो गया। उसे पागल खाने भेज दिया गया, वहाँ ही उसकी मृत्यू हो गई। "मैला आँचल" उपन्यास का आरंभ भी इसी से किया गया है।

मेरीगंज के लोगों का मुख्य व्यवसाय खेती है। यह गाँव पिछड़ा होने के कारण इनकी खेती की पध्दति भी पुरानी ही है। हल चलाना, बीज बोना, फसल काटना आदि सब तरिके पुराने ही है। सामान्य किसानों के लिए अपनी खाने की जरूरत पूरी हो इतनी ही जमीन है, तो तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद और यादव टोली के मुखिया खेलावन यादव के पास बहुत जमीन है, वे एक ही समय में चार–पाँच हल चलाते है। तहसीलदार जैसे जमींदार आधुनिक

तंत्रों के सहारे खेती कर रहे है। ट्रॅक्टर का प्रयोग करना इसका सबूत है, जिसके कारण पैदावार बढती है। मुख्य पैदावर धान, पाट, खेसारी है। रब्बी फसल कभी–कभी अच्छी होती है।

मेरीगंज के लोगों का रहन–सहन सीधा है। स्त्रियाँ साधे ढंग से साडी पहनती है। धीरे–धीरे इनपर शहरी जीवन का प्रभाव दिखाई देता है। फुलिया का परिवर्तित रहन–सहन उसका उदाहरण है। फुलिया के बारे में उपन्यासकार लिखते हैं – "एकदम बदल गयी है फुलिया। साडी पहनने का ढंग, बोलने – बतियाने का ढंग सबकुछ बदल गया है। तहसीलदार साहब की बेटी कमली अँगिया के नीचे जैसी छोटी चोली पहनती है, वैसी वह भी पहनती है। कान में पीतर के फूल हैं। फूल नहीं, फुलिया कहती है – कनपासा।"[66] इससे ग्रामीण जन–जीवन पर शहरी जीवन का प्रभाव लक्षित होता है।

मेरीगंज में चार जाति के लोग प्रमुख रूप से रहते है। ये लोग मुख्यतः ब्राह्मण टोली, कायस्थ टोली, यादव टोली और राजपूत टोली आदि में विभाजित है। ब्राह्मण टोली के लोगों की संख्या कम है इसलिए उनका दल गौण माना जाता है। अतः वे तीसरी शक्ति का प्रयोग करते है। अर्थात ब्राह्मण लोग इन तीन दलों को आपस में भिड़वाते है। यादवों का दल नया है, यादव टोली के मुखिया खेलावन यादव है। यादवों व्दारा जनेऊ लेने के बाद भी राजपूतों ने उन्हें मान्यता नहीं दी। अतः वे राजपूतों के विरोधी है। कायस्थ और राजपूतों की पुश्तैनी दुश्मनी है। कायस्थ टोली के मुखिया विश्वनाथप्रसाद मल्लिक है जो राजपारबंगा के तहसीलदार है। तहसीलदारी उनके खान–दान में तीन पुस्त से चली आ रही है, इसी के बल पर वे हजार बीघे जमीन के मालिक है। कायस्थ टोली को गाँव की अन्य जाति के लोग "मालिकटोला" कहते हैं। राजपूत टोली को "कैंथटाली" कहा जाता है। राजपूत टोली के मुखिया ठाकुर रामकिरपालसिंघ है, ये तीन सौ बीघे जमीन के मालिक है। अतः गाँव में प्रमुख दल कायस्थ, राजपूत और यादव ही है। ब्राह्मण लोग तृतीय शक्ति है। गाँव के अन्य जाति के लोग सुविधानुसार इन्हीं तीन दलों में बँटे हुए है। गाँव में और एक जाति है, संथालों की जो शोषित

और प्रताड़ित है। जमींदार इनका खूब शोषण करते हैं। यहाँ स्पष्ट है अपनी व्यवस्था नुसार टोली के रूप में मेरीगंज बँटा हुआ है, जिसके कारण ग्राम में संघर्ष चला रहता है।

मेरीगंज में अंचल को मध्य में रखकर लेखक ने सामाजिक जीवन में व्याप्त वर्गीय शोषण को अभिव्यक्ति दी है और यह स्पष्ट किया है कि सामान्य व्यक्ति को कितनी विषमताओं और अन्याय के बीच रहना पडता है। मेरीगंज में अंचल में शोषित वर्ग संथाल जाति है। इनके परिश्रम से मेरीगंज की सैंकडों बीघे जमीन आबाद करवा ली गई लेकिन फिर भी इन्हें गाँववालों के साथ नहीं बसने दिया जाता। ये लोग जंगलों में ही रहते हैं। नीलहे साहबों के नील के नाँद में ही इन्हीं इन्सानों का पसीना बहता रहता है फिर भी उनके पास अपने झोंपडे बाँधने के लिए अपनी नहीं है। वे सिर्फ दूसरों के लिए काम करते हैं। वर्षों से वहाँ रहने के बाद भी उन्हें मेरीगंज का नहीं माना जाता। वे बाहरी आदमी समझे जाते है। उनकी फरियाद सुननेवाला कोई भी नहीं। जब भी वे अन्याय और शोषण के विरूध्द आवाज उठाने की कोशिश करते है, विद्रोही की दिशा में कदम उठाते है तब उन्हें जोर-जुल्म तथा कानून दोनों तरफ से कुचल दिया जाता है। संथालों के समान ही गाँव में रहनेवाले मजदूरों की स्थिति है। उनका भी नियमित शोषण होता है। उनको सवा रूपये मजदूरी मिलती है, जिसमें एक व्यक्ति का पेट भरना भी मुश्किल है। वहाँ उनको इतनी मजदूरी में घर चलाना पडता है। महंगाई बढ रही है लेकिन खेत-मजदूरों को कुछ नहीं मिलता मगर जमींदारों को अनाज की ऊँची मूल्य के कारण बहुत लाभ होता है। कपड़े के अभाव में ये लोग अर्धनग्न रहते है। औरतें आँगन में काम करते समय एक कपडा कमर में लपेटकर काम चलाती है, तो बच्चे बारह वर्ष तक नंगे ही रहते है।[67] यह वर्णन ग्रामजीवन की आर्थिक विवशता को यथार्थ रूप में चित्रित करने में सफल लगता है। गरीबों के लिए गाँव में जीना दुसह हो गया है। जमींदार अधिक धनी हो गए। गाँव में जमींदार, शासन अधिकारी, महाजन सहदेव मिसर आदि लोग किसानों मजदूरों का शोषण करते है। अपने अधिकारों का दुरूपयोग करके दमनचक्र को चलाते है।

मेरीगंज में अनैतिक संबंध के अनेक उदाहरण दिखाई देते है। इस कथा का प्रमुख नायक डॉ.प्रशांत भी इससे अछूता नहीं रहा है। तहसीलदार की बेटी कमली उनके तरफ आकर्षित होती है। विवाह से पहले ही कमला डॉ.प्रशांत से गर्भ धारण करती है। जब घर में यह बात खुलती है, शिशु जन्म लेता है तब डॉक्टर प्रशांत और कमला की शादी होती है, यह एक अलग बात है। यही स्त्री–पुरूष का अवैध संबंध अशिक्षा, कुंठा, गलत संस्कार का परिणाम है। मठ की दासिन लक्ष्मी को सेवादास, रामदास, नागा बाबा सभी भोगना चाहते है लेकिन वह बलदेव से अपना संबंध स्थापित करना चाहती है। फुलिया खलासी से विवाह रचाती है। "पैटमान" सहदेव मिसिर से अनैतिक संबंध रखती है। यही स्थिति रामपियारिया और रधिया की है। चरखा संघ की मंगलादेवी के बारें में भी अनेक किस्से प्रचलित है। करघा मास्टर टुनटुन मंगला को पाने के लिए तडपता हैं। पटना में जब वह ट्रेनिंग ले रही थीं, तभी से उनके अनेक पुरूषों से अवैध संबंध थे। इनसे मिलनेवालों की हमेशा भीड़ रहती थी, जिसमें कॉलेज के विद्यार्थी, एम.एल.ए., साहित्य गोष्टी के मन्त्रीजी, चर्खासंघ के कार्यकर्ता तथा कई हिन्दी दैनिकों के सहायक संपादक भी थे। नया तहसीलदार हरगौरी सिंह अपनी मौसेरी बहन कुसुमी में फँसा है। रामपियारिया की माँ सात बेटों के बाप छीत्तन में अटकी है। जोतखीजी की पत्नी अपने नौकर का बच्चा पेट में लिए है। नोखे की स्त्री रामलगन सिंह के बेटे में फँसी हुई है तो उचितदास की बेटी सरन महतो से। लरसिंघदास किसी कहारिन रधिया के चक्कर में पडा है, तो सकलदीप अपनी जवान औरत की उपेक्षा कर किसी लैला के साथ भाग निकला है। फुलिया की अनुपस्थिति में सहदेव मिसिर पनबतिया के घर चक्कर लगाता है, तो उधर फुलिया की माँ तरबन्ना में रात–रात भर सिंघवा के साथ मौज करती है। इतना ही नहीं तो गाँधी का सच्चा भक्त बावनदास भी कुछ क्षण के लिए तारावती के लिए दुर्बल होता है। जोतखीजी कालीचरण की माँ के दुश्चरित्र का उद्घाटन करते है। इसप्रकार लेखक ने "मैला आँचल" कथानक में जगह–जगह पर ऐसे अनुचित संबंधों का पर्दाफाश किया है तथा ग्राम–जीवन में फैले अनुचित संबंधों को उजागर किया है। ऐसे संबंध केवल ग्राम–जीवन में ही है, ऐसा नहीं,

तो शहरों में भी ऐसे अनुचित संबंध अक्सर पाए जाते है। इसको स्पष्ट करते हुए लेखक ने ममता के पत्र व्दारा शहरी जीवन की भयावह स्थिति को पर प्रकाश डाला है। सामान्यवर्गीय फुलमतिया उच्चवर्गीय लोगों की वासना का शिकार बनती है, तो अमलेश घर की नौकरानियों को भोगने के बाद अब अपनी चचेरी बहन वीणा पर आसक्त है।[68] तहसीलदार भी डॉ.प्रशांत को कुछ इसी तरह के किस्से सुनाते है। राजपारबंगा और डफसाहब की बेटी के अनुचित संबंध है, इसीलिए डफ साहब को हटा नहीं सकते। जातीय वैमनस्य के आधार पर गाँववाले संथाल औरतों के साथ खुले बलात्कार का आवाहन करते है। संथालों की बूढी और जवान औरतों के साथ ही नहीं बल्कि बच्चियों के साथ पाट के खेतों में बलात्कार किया जाता है। ऐसी स्थिति में असहाय संथाल नारी दोहरे दर्द से चिल्लाती रहती है। इसीतरह लेखक ने ग्राम्य जीवन के अनुचित संबंधों की विस्तारपूर्वक चर्चा करके उसकी भयावहता को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। जाति के आधारपर संथाल नारियों के साथ बलात्कार का आयोजन दानवीय, पाशवीक शक्ति का प्रतीक है। इन्सानियत के नाम पर धब्बा है। नारी शोषण का अवैध संबंध एक खन्त है। इसके बारे में लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय का कथन सोचनीय लगता है – "लेखक ने अनैतिकता के इतने व्यापक चित्र देकर परानैतिक मूल्यों की स्थापना पर बल दिया है। यह एक प्रकार से पुरानी और नयी सांस्कृतिक परंपराओं की टकराहट भी है।"[69]

भारतीय जन–जीवन में धर्म का एक अलग स्थान है। धर्म के कारण व्यक्ति की धार्मिकता तथा धार्मिक वृत्ती को बढावा मिला है। लेकिन यही धर्म आज एक पाखंड या अंधविश्वास मात्र रह गया है। यह भ्रष्टाचार का केंद्र बन चुका है। मेरीगंज की स्थिति भी कुछ ऐसी ही है। गाँव में एक मठ है वहाँ के अंधे महन्त सेवादास की मृत्यु के बाद नये महंथ को चादर टीका देने का प्रश्न उठता है। रामदास महंथ सेवादास का एकमात्र चेला है। लक्ष्मी मठ की दासिन है। मठ की अचल सम्पत्ति, पशुधन और दासी लक्ष्मी को देखकर महंथी पाने के लिए मुजफ्फरपुर जिले का मुरती लरसिंहदास रामदास का प्रतिस्पर्धी बन जाता है। इससे पहले वह पुपड़ी मठ के महंथ का चेला था। एक दिन वह सोनमतिया कहारिनकी बेटी

रधिया को लेकर नौटंकी कम्पनी में शामिल हो गया, लेकिन वहाँ उसकी रधिया छिन जाती है, उसकी पीटाई होती है। वापस लौटनेपर मठ के महंथ उसकी खटाई करते है, तब वह रामबरन कामटी के कहनेपर गाँजे का स्मगलिंग शुरू करता है। उसे जेल जाना पडता है इधर महंथ सेवादास की मृत्यु होनेपर अपने को महंथी मिलने के लिए वह मेरीगंज में डेरा डालता है। आचरन गुरू मेरीगंज में आने से पहले ही वह उन्हें मिलता है और महंथी खुद को देने के लिए कहता है। आचरन गुरू उसकी तरफ से फैसला देते है लेकिन सोशालिस्ट कालीचरण इस फैसले को नहीं मानता सबकी पीटाई करके रामदास को महंथी देता है। रामदास भी अपनी महंथी को टिका नहीं पाता वह पढ़ा-लिखा नहीं है। इसीकारण वह मठ का हिसाब भी नहीं रख पाता। सारा हिसाब लक्ष्मी रखती है। रामदास लक्ष्मी को पाना चाहता है लेकिन कालीचरण के डर से कुछ नहीं कहता। अपने शरीर की भूख मिटाने के लिए रामपियरिया को रखता है। लक्ष्मी को मठ से बाहर निकालता है। रामपियरिया और उसकी माँ के कारण मठ उजड़ जाता है। इसीतरह "मैला आँचल" का यह मठ धर्म के नाम पर किए गए आडंबर, व्यभिचार की जीवन्त चित्रावली प्रस्तुत करता है। यहाँ स्पष्ट है धर्म का आधार लेकर अनैतिक कर्म हो रहे है। महंथी पाने के लिए कई अवैध हथकंडे अपनाने वाले महंतों की पोल यहाँ खोल दी है। अवैध धंदों के विरोध में कार्यरत कालीदास उपन्यासकार के विचारों का प्रतीक है। "नारी भोग" धर्म का घिनौना अंग बना है। अज्ञान, अनैतिकता, अधर्म के कारण ग्रामवासियों का शोषण हो रहा है। इसके साथ ही लेखक ने धार्मिक विश्वासों के खोखलेपन और धर्म तथा आस्था के उस पाखंड पर करारा व्यंग्य किया है।

अंधविश्वास, रूढ़ि-परंपरा, ग्राम-जीवन की धरोहर लगती है। मेरीगंज में भी अनेक अंधविश्वास प्रचलित है। मलेरिया सेक्टर में डॉ. प्रशांत के आने की सूचना मिलती हैं तो लोग आपस में तरह-तरह की बातें करने लगते है। ब्राह्मण टोलीवाले दिन-रात डाक्टर और अंग्रेजी दवा के खिलाफ तरह-तरह की कहानियाँ सुनाते हैं। जोतखीजी का यह विश्वास है कि डाक्टर लोग ही रोग फैलाते है, सुई भोंककर देह में जहर दे देते हैं, जिससे आदमी हमेशा के लिए

कमजोर होता है, हैजा के समय में कूपों में दवा डाल देते हैं, गाँव का गाँव हैजा से समाप्त हो जाता है। "आजकल घर–घर कालाबुखार फैल गया है। ... इसके अलावा बिलैती दवा में गाय का खून मिला रहता है।"[70] जनता के मन में भय का भाव पैदा करके दवाइयाँ लेने से रोकना ब्राह्मणों का कार्यसूत्र लगता है। गाँव में बीमारी फैलाने पर ये लोग मंतर–तंतर, झाड–फूँक से इलाज करते थे लेकिन डॉक्टर के आने से इनका यह काम बंद हो गया था। इसीकारण उत्तेजित ब्राह्मण लोग ऐसी कई किवंदतियों को प्रचलित करते है। तहसीलदार की बेटी कमली एक बार बेहोश होने पर जोतखीजी ने जन्तर बनवाकर दिया, झाड–फूँक भी किया था लेकिन कुछ भी असर नहीं हुआ। कमली के शादी के बारे में भी अनेक अंधविश्वास प्रचलित है। पहली जगह कमली की शादी की बात पक्की होने पर लडके की माँ मर गई। दूसरी जगह ठीक हुई तो उसके घर में आग लग गई, तीसरी बार तो खुद लडका ही मर गया। इसीकारण अब कोई भी लडका उसके साथ शादी करने के लिए तैयार नहीं होता। लोगों का यह विश्वास हो गया था कि कमला मैया (नदी) नहीं चाहती कि उसकी शादी हो। इसीतरह खेलावन यादव का लडका सकलदीप के बारे में जोतखीजी ने कहा था कि "सकलदीप का अठारह साल की उम्र में माता–पिता का वियोग लिखा हुआ है।" सबको सलाह देनेवाले जोतखीजी खुद अपने घर में भी परेशान थे। उनकी चौथी बीबी दर्द के कराहती है फिर भी वे डॉक्टर के पास भेजने के लिए तैयार नहीं तथा लड़का रामनारायण कुपुत्र निकला। वे कहते है – हाथ की उर्ध्व–रेखा तो सीधे तर्जनी में चली गयी है, लेकिन कुण्डली के दसम घर में शनि है।"[71] अर्थात जन्मकुण्डली, ग्रह वगैरे पर विश्वास रखना अंधविश्वास का ही लक्षण है। अंधविश्वास के साथ भूत–पिशाच्च, डांयन पर भी विश्वास रखनेवाले लोग रहे है। गणेश की नानी के बारे में तो लोगों का विश्वास है कि वह डाईन है। "डाईन है। तीन कुल में एक को भी नहीं छोडा। सबको खा गयी। पहले भतार को, इसके बाद देवर–देवरानी, बेटा–बेटी, सबको खा गयी। अब एक नाती है, उसको भी चबा रही है।" सारा गाँव उसे डायन मानता है। जोतखीजी, हीरू का बेटा एक दिन के बुखार में चला जाने से हीरू को बताते हैं कि तुम्हारे ऊपर डायन का प्रभाव है – "शुक्रवार को अमावस्या है। जिस पर तुमको संदेह हो, उसके पिछवाड़े में बैठे रहना। ठीक दो

पहर रात को वह निकलेगी। उसका पीछा करना। वह तुम्हारे बच्चे को गिलाकर, तेल फुलेल लगाकर, गोदी में लेकर जब नाचने लगेगी तो .... उस समय यदि उससे बच्चा छीन लोतो फिर उस बच्चे को कोई मार ही नहीं सकता। ... इन्द्र का वज्र भी फूल हो जायेगा।"[72] यह विश्वास दिलाने पर हीरू गणेश के घर के पिछवाडे में बैठता है और गणेश की नानी बाहर आने पर उसे मार डालता है। एक अंधविश्वास के कारण ही गणेश की नानी मारी जाती है। गणेश बेसहारा हो जाता है। कमजोर मानसिकता के कारण कई अंधविश्वास बने है ऐसा यहाँ लगता है। वैज्ञानिकता का अभाव यहाँ स्पष्ट होता है।

मेरीगंज के लोग शकुन और अपशकुन को भी बहुत मानते है। महन्थसाहेब का बीजक जल गया तो महन्थसाहेब उसे बडा अपशकुन, अमंगल मानते है। इस पाप का दण्ड भी भोगना पडेगा ऐसा कहकर अपना शरीर त्याग देते है। वस्तुत: बीजक चिलम की आग के कारण जला था। इसीतरह हरगौरी नया तहसीलदार बनने पर शुभ दिन देखकर बही–बस्ता को हाथ लगायेगा। इस बारे में जोतखीजी सलाह देते हुए कहते हैं – "बिना लछमी की पूजा किये वही–बस्ता में हाथ नहीं लगाया जाय। शुक्रवार को शुभ दिन है।" शुभ–दिन पर कार्य करना आज भी लोगों की प्रवृत्ति बनी रही है।

यहाँ के लोगों में धार्मिक अंधविश्वास भी अधिक दिखाई देता है। मठ और कमला नदी को देवता मानकर पूजते है। पौष पूर्णिमा में नदी पर स्नान के लिए बहुत भीड़ होती है, उसी समय हलवाई और परचून की दुकाने भी होती है। इस नदी के बारे में लोग अनेक कहानियाँ कहते है। गाँव में किसी के यहाँ शादी–ब्याह या श्राध्द–भोज हो तो गृहपति वहाँ स्थान करके कमला मैया को पान–सुपारी से निमंत्रित करता था। फिर किनारे पर चाँदी, थालों, कटोरों और गिलासों के ढेर लग जाते थे लेकिन एक दिन किसी ने वहाँ से कुछ शालियाँ और कटौरे चुराये तो कमला मैया ने यह बर्तनदान बंद किया और गृहपति का वंश ही खत्म हो गया। इसी तरह की अनेक किवदन्तियाँ लोग कहते है। धार्मिक श्रध्दा से नदी की पूजा करते है। इसी धार्मिक उत्सव के लिए लोग अपनी जमीन तक गिरवी रखकर अथवा बेच कर उसे पूरा

करने का प्रयास करते है। खेलावन यादव अपने बैटे के प्रायश्चित और सतनारायण पूजा के लिए घर के पिछवाडे की जमीन, पूरा धान तहसिलदार को बेच देता है। यहाँ स्पष्ट है मेरीगंज के लोग हर हालत में, मुसीबत में धर्म–विश्वासों का पालन करते है, इसे धर्म मानते है। मेरीगुज में कई परंपराएँ स्थित है। ज्यादातर स्त्रियाँ ही इस परंपरा का पालन करती है। यहाँ शरीर गोदने की और पर्दा प्रथा प्रचलित है। डॉक्टर कमली को देखने के लिए घर जाता है तब कमली की माँ पर्दा करती है, तथा अन्य स्त्रियाँ भी घूँघट निकालती है, केवल घर की नौकरानी धूँघट तथा पर्दा नहीं करती।

मेरीगंज में अनेक जाति के लोग रहते है। हर एक जाति की अपनी–अपनी एक जीने की पध्दति है। साथ–ही–साथ लोगों में जातियता की भावना भी सबसे प्रबल दिखाई देती है। हर जाति अपना श्रेष्ठत्व दिखाने की कोशिश में लगी रहती है। मेरीगंज में लोगों की पहचान उसके काम से नहीं तो उसकी जाति से होती है। डॉ.प्रशांत गाँव में आने पर सबसे पहले लोग उसे उसकी जात पूछते है। गाँव में झगड़े होने का मुख्य कारण यही जाति है। जाति के बिना गाँव का पत्ता भी नहीं हिलता। हर जाति के अपने–अपने बंधन है और इसको पूरा भी किया जाता है। वैसे लोग अपनी जाति छोडकर दूसरी जाति की लड़की से भी शादी करते है या कर सकते है। यह गाँव प्रगतिवादी विचारधारा का द्योतक लगता है। सजा के रुप में उससे नाच करवाया जाता है। "…. कल खम्हार खुलेगा, पिछले साल तो खम्हार खुलने के दिन तालिमसिंह का नाच हुआ था। तालिमसिंह सिपैहिया ने एक डोमिन से शादी कर ली थी।"[74] यहाँ स्पष्ट है आज धीरे–धीरे जातीयता की दीवार टूट रही है। लेकिन उसकी गति धीमी है।

"मैला आँचल" उपन्यास में स्त्री पात्रों में मेरीगंज की कोठारिन लक्ष्मी का चरित्र अधिक विस्तार से प्रस्तुत हुआ है। लक्ष्मी का पिता मेरीगंज मठ के अधिन एक मठ का सेवक था। उसके लिए वसुमतिया के महंथ और मेरीगंज के महंथ सेवादास के बीच काफी लड़ाई–झगड़ा हुआ। अन्त में कानून जीतकर लक्ष्मी मेरीगंज के महंथ सेवादास की हो गई। अदालत में सेवादास ने उसे बेटी की तरह रखने का आश्वासन दिया था। लेकिन उसने उसे दासी बनाकर रखा।

महंथ सेवादास के मन में उसके प्रति आकर्षण है। वह उसे प्राप्त करने का प्रयास भी करता है। सेवादास की मृत्यु के बाद रामदास लक्ष्मी एक नजर रखे हुए है, लेकिन लक्ष्मी उसै मौका नहीं देती। उसकी नियम वह पहचानती है और रामपियरिया को रखने की सलाह देती है। रामपियरिया आने पर वह लक्ष्मी को मठ से निकालती है। शोषित नारी के रूप में केवल लक्ष्मी नजर आती है। लेकिन लक्ष्मी का आकर्षण बलदेव की तरफ है। महंथी की लालसा में आनेवाला लरसिंहदास भी लक्ष्मी को पाने के लिए बेताब है। लेकिन कालीचरण के कारण उसे महंथी नहीं मिलती। आखिर में लक्ष्मी मठ को छोड़कर बलदेव के साथ रहती है तो बलदेव की मौसी उसे हररोज गालियाँ देती है। यह सब अन्याय सहते हुए वह वही रहती है। दूसरा स्त्री पात्र है तहसीलदार की बेटी कमला। लेकिन यह तहसीलदार की इकलौती बेटी होने के कारण इसे पूरी सहुलियत रहती है। चरखा सेन्टर की मास्टरनी मंगलादेवी एक उल्लेखनीय नारी पात्र है। वह गाँव के लोगों की हैजा की बीमारी में सेवा करती है, लेकिन वह जब बीमार होती है, तो कोई भी उसे देखने के लिए नहीं आता। वह एकाकी है। वह महसूस करती है, अबला चाहे कहीं भी रहे, वह अबला ही हैं। बस, औरत के नाम पर पुरूष का पशु झपटने के लिए हर समय, हर कहीं तैयार रहता है। मंगला के नाम पर अनेक अफवाहें फैलती है लेकिन वह इसकी चिन्ता नहीं करती। यह केवल अपना काम करती है। कमला पुरूषों के साथ कंधे–से–कंधा मिलाकर काम करती है। डॉ.प्रशांत की पटना मेडिकल कालेज की दोस्त ममता "मैला आँचल" की उल्लेखनीय पात्र है। ममता के मन में प्रशांत के प्रति आकर्षण है। डॉक्टर मेरीगंज में आने पर वह हमेशा खत लिखकर उसका हौसला बढाती है। वह शहर में रहती है। लेकिन उसको भी लोग ताना देते रहते है। एक त्याग की मूर्ति के रूप में वह सामने आती है। लक्ष्मी के साथ–साथ नारी शोषण के रूप में शहर की फुलमतिया आती है, जिसपर सामूहिक रूप में बलात्कार किया जाता है। दूसरी गाँव की रधिया। रधिया अल्लड थी और एक ही चक्कर में लरसिंहदास के हाथ आ गई थी। लरसिंघदास रधिया को लेकर नौटंकी कंपनी शुरू करनेवाला था लेकिन यह उसका दाँव सफल नहीं हुआ। यहाँ स्पष्ट है "मैला आँचल" में

मेरीगंज के बहुआयामी नारी पात्रों का चित्रण हुआ है। नारी शोषण के भी विविध रुप उसके सहारे स्पष्ट होते है। पढ़ी–लिखी, अनपढ़, बलात्कारीत, शोषित, अबला, समाजसेवी की प्रेरणादायी आदि कई उसके रुप दिखाई देते है। यह रचना नारी जीवन का हर एक कोना छान मारती है ऐसा लगता है।

मेरीगंज में बहुविवाह पध्दति भी प्रचलित है। जोतखीजी की चार शादीयाँ हो चुकी थी। मेरीगंज में सबसे जादा शादी करनेवाले केवल जोतखीजी है।

मेरीगंज में किसानों की तरफ से लडनेवाला कालीचरन सोशालिस्ट नेता है। कालीचरण शोषण पध्दति के विरोध में आवाज उठाकर किसानों को जागृत करता है। संथालों को भी वही सचेत करता है। लेकिन तहसीलदार, खेलावन यादव जैसे लोग उसे अपने जाल में फँासकर जेल में भेजते है। कालीचरण गाँव में विद्रोह के बीज बो देता है। अपने हक के लिए किसान भी लड़ते है। पंच व्यवस्था में कालीचरण खुद शामिल होकर जब अपने आपको भी पंच घोषित करता है तब सारा गाँव उसका साथ देता है। कालीचरण लक्ष्मी को लरसिंघदास जैसे पाखंडी के हाथ से बचाता है। तभी से लक्ष्मी के दिल में उसके लिए आदर, स्नेह निर्माण होता है। बलदेव गाँव में चरखा सेन्टर खुलवाता है। वह काँग्रेस का कार्यकर्ता है। वह लोगों की श्रध्दा, भक्ति, विश्वास पाने में सफल होता है। मगर अंत में भ्रष्टाचार, पाखंडी नेता का वह प्रतिनिधि बन जाता है। वह कपड़ा, चीनी और राशन में भ्रष्टाचार करता है। कालीचरन सारा कारोबार अपने हाथ में लेकर लोगों को न्याय दिलाता है तथा लोगों के हक के लिए भी लड़ता है। वह आदर्श नेता के रुप में सामने आता है।

मेरीग़ंज के लोगों में व्यसनाधिनता भी नजर आती है। अधिकतर मठ के लोगों में यह व्यसनाधिनता दिखाई देती है। धर्म के नाम पर मठ स्थापित होते है। लोग पूरे श्रध्दा और विश्वास से आते हैं, लेकिन यह एक धर्म के नामपर आडंबर, व्यभिचार, भ्रष्टाचार का केंद्र बन जाता है। मठ में रहनेवाले महंथ कुछ काम नहीं करते। बस्स दिन–रात अफीम, गांजा पीते है। यही उनकी आदत मजबुरी बनती है।

हर देश, प्रदेश की अलग–अलग संस्कृति और संस्कार होते है। इन सारे संस्कारों में एक है मृतक संस्कार। यह संस्कार हर जगह विभिन्न तरीके से अपने अपने रस्म के अनुसार किया जाता है। महंथ सेवादास की मृत्यु होने पर सबसे पहले रामदास माटी देता है। महंथ के शरीर पर सफेद चादर डाली जाती हैं, फिर फुलों की माला। लक्ष्मी दासिन मुट्टी भर माटी महंथसाहेब की सफेद चादर पर डाल देती है। बाद में साधु लोग कुदाली से गोर में मिट्टी भरने लगते हैं। इसीतरह यहाँ मृतक के शरीर को दफना जाता है। श्राध्द में भोज दिया जाता है। महात्मा गाँधी की हत्या होने के बाद मेरीगंज में भी उसीतरह की अर्थी निकाली जाती है और म.गांधीजी के श्राध्द के दिन तहसीलदार सारे गाँव को भोजन देते है। यहाँ मृतक संस्कार भी अनोखा लगता है।

ग्रामीण जन–जीवन में लोककथा तथा लोकगीत का अपना एक अलग स्थान होता है। यह लोगों के मनोरंजन के साधन प्रतीत होते है। इसी के द्वारा लोग अपना मन बहलाते है। यह एक लोकसंस्कृति के रुप में दिखाई देता है। मेरीगंज में ऐसे लोकगीतों की अधिकता है। किसी के शादी ब्याह में, खेतों में धान उगाने से पहले, त्यौहार पर ऐसे गीत गाए जाते है। परंपरा के रुप में गाये जानेवाले ये गीत जिनके रचयिताओं का कोई उल्लेख नहीं है। मेरीगंज वासियों के तो माने नस–नस में संगीत व्याप्त है। सुरंगा–सदाब्रिज की प्रणय–भावना को भोली शब्दावली में अभिव्यक्ति देनेवाली इन पंक्तियों में आंचलिक प्रणय की भावपूर्ण प्रस्तुति हुई है –

"नहीं तोरा आहे प्यारी तेग तरबरिया से
नहीं तोरा पास में तीर जी ।...
– – – – – – – – – – – – –
फँसी गइली परेम के डोर जी ।...." [75]

यही स्थिति प्रेयसी की भी है। अपनी प्रिया के रुप की स्मृति मात्र से ही उसके प्राणों में तीर–सा झालने लगता है –

"याद जो आवे है प्यारी मोहरी सुरतिया से
शाले करेजवा में तीर जी ...।"

प्रणय की यह प्रेरणा मुक्त वातावरण की उपज है। इसी तरह ननर-भाभी के सम्मुख अपने मन की आकांक्षा भी रख देती है। वह युवा हो गई हैं लेकिन अभी तक उसका गौना नहीं हुआ। गाडी वालों का दल भौजी का यह गीत गाता हुआ चला जा रहा है –

"चढली जवानी मोरा अंग – अंग फडके से
कब होइ हैं गवना हमारे रे भउनिया ऽ ऽ ऽ।"[76]

धान उगाने के दिनों में दिन-भर धान झाड-फटककर जमा किया जाता है। फिर धान के बोझे छिंट दिये जाते है फिर दबनी-मडनी शुरू होती है। शाम को घूर के पास 'लोरिक' या कुमर 'बिज्जेभान' की गीत कथा होती है –

"अरे राम राम रे दैवा रे इसर रे महादेव,
बाये ठाढ़ी देवी दुरगा दाहिन बोले काग।"

इसी तरह होली के गीत प्रकृति का बारहमासा का गीत है, प्रिय की स्मृति में विरहीणी गानेवाले गीत है आदि सभी प्रकार के गीत "मैला आँचल" में लोकगीतों के रुप में मिलते, जिससे यह ग्राम-जीवन का स्वरुप अधिक जीवन्त प्रतीत होता है। डॉ.जवाहरसिंह का इस बारे में कथन है – "हिन्दी के प्रथम आँचलिक उपन्यास अपने "मैला आँचल" में ही भाषिक संरचना का जो प्रतिमान स्थापित कर दिया वह एक तरह से आँचलिक उपन्यासों के भावशिल्प के लिए मानक बन गया।"[77]

मेरीगंज में लोगों में शिक्षा के प्रति आस्था नहीं दिखाई देती है। पुरे मेरीगंज में केवल दस आदमी पढ़े-लिखे है। नया तहसीलदार हरगौरी जो अपने आपको तहसीलदार बना लेता है। लेकिन पढ़ाई-लिखाई में भी कम ही है। हरगौरी के बारे में लोगों के विचार शिक्षा व्यवस्था पर प्रकाश डालते हैं – "अरे पढ़ता क्या है, दाढी मोच हो गया और अपना सकल दीप से दो गिलास नीचे पढ़ता है। एकदम फेलियर है। इस साल भी फैल हो गया है। उसका बाप मास्टर को घूस देने गया था। मास्टर गुस्साकार बोला भागो, नहीं तो तुमको भी फैल कर देंगे। मेरीगंज में नए पढने वालों की संख्या केवल पंद्रह है। सारे मेरीगंज में दस आदमी पढे-लिखे

हैं – पढ़े–लिखे का मतलब हुआ अपना दस्तखत करने से लेकर तहसीलदारी करने तक की पढ़ाई। नये पढ़नेवालों की संख्या है पन्द्रह। शिक्षा के बारे में लोगों की मान्यता सिर्फ दस्तखत तक सीमित रही है। शिक्षा व्यवस्था का अभाव यहाँ दिखाई देता है, जिसके कारण वहाँ सिर्फ पन्द्रह आदमी पढ़े–लिखे है। आज सरकार की उदात्त एवं अनिवार्य शिक्षा नीति के कारण इस में प्रगति हो रही है।

मेरीगंज के लोग त्यौहार मनाने के आदती है। फागुन महीने की होली बडे धूम–धाम से मनाई जाती है। सबसे बडे उत्सव के रुप में होली ही मानी जाती है। दीवाली भी मनाते है लेकिन होली जैसी नहीं। होली के आयोजन के लिए लोग मालिक से पैसा लेते है। पैसे लेने के लिए पाँच दिन पहले से ही भीड़ लग जाती है और कर्ज के रुप में गाँव के बडे लोग मजदूरों को धान भी देते है। अत: छोटा होया बडा, गरीब हो या धनिक तथा सभी जाति के लोग यह होली नाच–गान के साथ मनाते है। गाँव में सिखा पर्व पर मछली की शिकार होती है। चैत्र संक्रांति मनाने के दूसरे ही दिन यह पर्व मनाया जाता हे, छोटे–बडे, अमीर–गरीब सब राप और जाल लेकर सुबह ही मछली की शिकार के लिए निकलते है। दोपहर को केवल सत्तू खाते है। भूमिदाह न हो इसलिए उस दिन चूल्हा नहीं जलाते। कल का खाना ही खाते है। तहसीलदार के घर सत्यनारायण व्रत की कथा होती है। इसी तरह यह सिखा पर्व सभी जाति के लोग मनाते है। इस बारे में नैमिचंद्र जैन का कथन है – "लेखक का मेरीगंज के जीवन से परिचय बडा घनिष्ठ है। परिचय की इस घनिष्ठता से भी कहीं अधिक महत्वपूर्ण है, वह दृष्टिबिंदु जिसके कारण जीवन एक नए गीत–सूत्र में बंधा–खिंचता और बदलता हुआ दिखता है। सारे सामाजिक संबंध नए–नए परिप्रेक्ष्य में दिखाई पडते हैं, टूटते–बनते, बिगडते टूटते और फिर से बनते। जीवन अपने मौलिक, सहज–प्रवाही रुप में यहाँ है इसी में उसमें इतना रस है इतना संगीत और कवित्व है। इतनी तीव्रता और इतना दर्द है।"[78]

"मैला आँचल" की भाषा पाठक की एक विशिष्ट आंचलिक परिवेश में ले जाने में सक्षम है। संवादों में लोकप्रचलित शब्दों का सशक्त और प्रभावशाली प्रयोग किया है। कथन में

थोड़ा टेढ़ापन और व्यंग्यात्मकता है; नाटकीयता भी कहीं–कहीं मुखर हुई है, जिसके कारण अनेक स्थलों पर हास्य का पुट भी है। व्यंग्यात्मकता और हास्य का एक उदाहरण बडा ही मार्मिक बन पडा है। जैसे, "सबसे पहले कालीचरन नारा लगायेगा – इनकिलाब; तब तुम लोग एक साथ कहना – जिन्दाबाघ । वैसा गडबडा जाता है। कालीचरन कहेगा – अंग्रेजी राज, तुम लोग कहना – नास हो। लगाओ नारा कालीचरन । कालीचरन छाती का जोर लगाकर चिल्लाता है – "इनकिलाब ।" नाश हो, जिन्दा ... नाश।" "ऐ ठहरो, नहीं हुआ।"[79] "मैला आँचल" की भाषा में ग्रामीण (तद्भव) शब्दों की भी बाहुल्य है। जैसे, टीसन (स्टेशन), मलेटरी (मिलिट्री), जैहिन्द (जयहिन्द), रमैन (रामायण), डिस्टी बोट (डिस्ट्रिक्ट बोर्ड), डाकडर (डाक्टर), इसपिताल (अस्पताल), बोखार (बुखार), गन्दी (गांधी), सास्तर (शास्त्र), इसतिरी (स्त्री), परमेसर (परमेश्वर), हिन्साबात (हिंसावाद), आदि। ग्राम्य शब्दों का भी प्रयोग। तूलफजूल, फक्कड, गिराहना, आदि। तो कई शब्द परिवर्तन के साथ है, जैसे, भारथमाता (भारतमाता), मुरती (मूर्ति), सुराज (स्वराज्य), अरजुन (अर्जुन), सिकरेटरी (सेक्रेट्री), मोंछ (मूँछ) इससे ीाी कठिन दुरनाचारज (द्रोणाचार्य) आदि। तो कई शब्दों मे पाठक अटका रहता है, जैसे चौंगी, विधा, गमकौआ, खुट्टी, मोह आदि अनेक शब्द हैं। तो कुछ इसप्रकार लखनऊ के लिए "नखलौ", नोआखली के लिए "नखली", द्रोही के लिए "दुरोहित", तथा फैरिस्त के लिए "फिरिस" आदि। इसी के साथ–साथ लोकोक्तियों और मुहावरों का भी समय–समय पर प्रयोग किया गया है। जैसे, 1) दौडता है और देखते – देखते एक से दस हो जाता है। 2)इसीलिए देहात से हुक्का उठा गया। 3) कनपटी के पास लगता है, तपायि हुए नमक की पोटली है। आदि कई मुहावरे और लोकोक्तियाँ आँचलिक जन–जीवन की रेखा प्रस्तुत करती है। भाषा और शब्द प्रयोग के बारें में डॉ.उषा डोंगरा कहती है – "लेखक ने उपन्यास में यथास्थान तद्भव और देशज शब्दों के प्रयोग व्दारा ग्रामीण जीवन के यथार्थ स्वरूप को स्वाभाविक रूप में चित्रित किया है। यदि कहीं दुर्बोध शब्दों का प्रयोग हुआ है तो लेखक ने कुटनोए में उसका अर्थ लिखकर उन्हें सुबोध बनाने का प्रयास किया है।"[80]

रेणु ने आँचलिक वातावरण को और भी प्रभावशाली बनाने के लिए कई जगह चित्रात्मक संगीतमय शैली का प्रयोग सफलता के साथ किया है। जैसे , बिदापत नाच के समय मृदंग पर "चलन्ती" बन रहा है –

तिरकिट धिन्ना, तिरकिट धिन्ना ।
धिन तक धिन्ना, धिन तक धिन्ना
धिनक धिनक धा,
धिरक्, धिरक् तिन्ना ।[81]

इसी तरह के अनेक प्रयोग यहाँ मिलते है, जिससे आँचलिक वातावरण प्रभावी बन जाता है। इस संगीतात्मकता के बारे में डॉ.बंशीधर का विचार उल्लेखनीय है – "यहाँ के जीवन का कोई प्रसंग ऐसा नहीं होगा जहाँ बोल नहीं ढमकता हो, हास्य–व्यंग्य की बौछारें नहीं होती होंगी। उत्सव–पर्वो के गीतों में जहाँ मस्ती और मौज के गुलाल अबीर के रंग उडते है वही ऋतु गीतों में यहाँ की नदियों की अंत:वासिनी वेदना को बाल मिलते है।[82]

<u>निष्कर्ष</u> :– "मैला आँचल" एक आँचलिक उपन्यास है। इसमें मेरीगंज के अंचल को मध्य में रखकर पूरा कथानक पिरोया गया है। लेखक ने इसमें अनेक पात्रों को स्थान दिया है। इसका मुख्य पात्र डॉ.प्रशांत होकर भी केवल उसी को मध्ये में रखकर वर्णन नहीं किया गया बल्कि सभी पात्रों को समाष्टिगत रूप से महत्व दिया है। इसकी विशेषता यही है कि इसका प्रमुख पात्र डॉ.प्रशांत अनालंचिक है। वह शहरी सुविधा, विकास, संपन्नता को छोडकर एक अंचल के लिए लड़ता है, जिस अंचल में कूपमंडूकता, अंधविश्वास में पूरी तरह से जकड़े हुए लोग, परंपरा से बाह्य लोग पाये जाते है। डॉ.प्रशांत नवयुवकों के लिए एक प्रेरणादायी मूर्ति है। इस सबके साथ रेणु को इन कृति में अत्यंत मानवीय संवेदन के साथ ग्रामीण जन–जीवन की उन विशेषताओं और विसंगतियों को भी देखा है, जहाँ एक छोटी–सी दवाई के अभाव में लोग किडे की तरह मर रहे है। विज्ञान ने आज भी कितनी तरक्की की है लेकिन ऐसे कई अंचल आज भी दिखाई देती है, जहाँ शहरी सुविधाओं, संपन्नताओं का अभाव है। सामाजिक, सांस्कृतिक,

धार्मिकता की दृष्टि से "मैला आँचल" में आँचलिक क्षेत्रों में पाई जानेवाली राजनीति, जातिगत भेद, वैमनस्य, धार्मिक पाखंड, श्रमिक किसान, संथाल जैसी जाति पर जमीन मालिकों के अत्याचार, भोली-भाली जनता को ठगनेवाले ज्योतिषी, मठ के महंथ जो भ्रष्टाचार और व्यभिचार में लिता है, नेता लोग जो देश के नाम पर भ्रष्टाचार करते है। ऐसे कई दृष्टि से इसका रेखांकन सच्चे ढंग से प्रस्तुत हुआ है। इसके साथ-ही-साथ ग्रामीण जन-जीवन में लोकगीत, लोकाचार, प्रकृति की सुषमा, संगीत, उत्सव पर्व आदि का भी बडा सुंदर वर्णन हुआ है। यहाँ का जन-जीवन अन्याय, शोषण, क्रूरता आदि कई विसंगतियों से गुजरता हुआ भी एक सहज सरलता और सरसता से भर जाता है। इसकी ग्रामीण भाषा, व्यंग्यात्मकता, नाटकीयता के कारण पाठक की लालसा अंत तक खत्म नहीं होती। मानवीय संवेदन के व्यक्तिगत और सामाजिक स्तर पर एक अनूठी रचना है। व्यक्तिगत स्तर पर प्रशांत जो इस कथानक का नायक है। आरंभ से अंत तक एक व्यावहारिक आदर्श के रुप में प्रस्तुत होता है, यही उसकी सर्वोत्कृष्टता है। सामाजिक स्तर पर ऐसे कई पात्र है, जो समाज के वातावरण को सुधारने के बजाय बिगड़ते रहते है। इसी से ही भ्रष्टाचार, व्यभिचार, वैमनस्य का जन्म होता है, राष्ट्र के नाम पर अपने को नेता करनेवालों में बलदेव है, जो आगे भ्रष्टाचार और स्वार्थ का शिकार होता है। सच्चा राष्ट्रभक्त केवल बावनदास है लेकिन उसे भी एक दर्दनाक मौत मिलती है। नारी पात्रों में चरखा सेन्टर चलानेवाली मंगलादेवी और मठ की दासिन लक्ष्मी दोनों भी समाज से शोषित नारी है। इसी तरह अनेक पात्रों के माध्यम से सामाजिक व्यवस्था को मुखरित किया गया है, जिससे इस अंचल का एक जीता-जागता रूप हमारे सामने प्रस्तुत होता है। सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक सभी दृष्टियों से यह उपन्यास एक अनूठा शिल्प है। रेणु ने वैचारिकता और मानवी संवेदना के साथ इसे प्रस्तुत किया है। यही इनकी सार्थकता और श्रेष्ठता है।

निष्कर्ष :-

इस अध्याय में 'रतिनाथ की चाची' (1948), 'बलचनमा' (1952) 'गंगा मैया' (1953), 'बाबा बटेसरनाथ' (1954), 'मैला आँचल' (1954) आदि उपन्यास का संक्षेप में आशय दिया है। 'रतिनाथ की चाची' में शुभंकरपूर और तरकुलवा, 'बलचनमा' में दरभंगा का ग्रामजीवन, 'गंगा मैया' में बलिया के आस-पास का ग्रामजीवन, 'बाबा बटेसरनाथ' में रूपउली का और 'मैला आँचल' में मेरीगंज का ग्रामजीवन, लोगों में स्थित अज्ञान, अंधविश्वास, अशिक्षा, शोषण के विविध आयाम, उत्सव, पर्व, त्यौहार, जमींदारों की मनमानी, किसानों का शोषण और अपने हक के लिए आंदोलन, संगठन, नारी की स्थिति, विधवा नारी का शापित जीवन, भौतिक सुविधा, शिक्षा, स्वास्थ्य, याता-यात की साधनों का अभाव, प्राकृतिक आपदायें, उसमें अटकी हुई खेती, व्यवसाय, देवी-देवता संबंधी अज्ञान, धारणायें, मंत्र-तंत्र के प्रति मानसिकता, बलि प्रथा, राजनीतिक भ्रष्टाचार, उसका भयावह रूप, नेताओं की भ्रष्ट नीति आदि को प्रभावी ढंग में उपन्यासकारों ने चित्रित किया है। ये सभी उपन्यास ग्रामजीवन के प्रतिनिधि उपन्यास है। 'गंगा मैया' में विधवा का पुनर्विवाह रचाकर उपन्यासकार ने सामाजिक मान्यता को उखाड़ दिया है। नए मापदंड स्थापित करने का प्रयास किया है। नागार्जुन, भैरवप्रसाद गुप्त, फणीश्वरनाथ 'रेणु' के उपन्यासों में ग्राम जीवन के साथ प्रगतिशील दृष्टिकोन दिखाई देता है। गाँव में होनेवाला सुधार, नई पीढ़ी के नए विवाह, नई चेतना आदि को इन्होंने प्रमुख स्थान दिया है। इसी कारण से उपन्यासों में प्रगतिशील दृष्टिकोण का यथार्थ चित्रण हुआ है। बाबा बटेसरनाथ का जैकिसुन, बलचनमा का रहमान, गंगा मैया का मटरू, मैला आँचल का कालीचरन आदि प्रगतिवादी विचारधारा के प्रतिनिधि पात्र लगते है।

इसमें सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का चित्रण भी काफी प्रभावी बना है। नागार्जुनजी ने अपने उपन्यासों में लोकगीत, लोककथा, उत्सव, पर्व, त्यौहार आदि का यथार्थ चित्रण किया है। फणीश्वरनाथ रेणु जी के "मैला आँचल" में लोकगीत और लोककथाा की भरमार है, इसी के कारण ग्राम-जीवन की सांस्कृतिकता का प्रभावात्मक रूप उपन्यास में प्रस्तुत हुआ है।

भैरवप्रसाद गुप्तजी के 'गंगा मैया' में भी संस्कृति की दृष्टि से विभिन्न गीत का चित्रण है। केवल इन लेखकों ने लोकगीत तथा कथाओं को ही वर्णन नहीं किया बल्कि इसके साथ–ही–साथ ग्रामीण बोली भाषा, संवाद, वातावरण, विवाह प्रथा पध्दति का भी ग्रामजीवन के चित्रण में काफी सहयोग मिला है। गरीबी यह सभी को शाप है। अपना पेट भरने के लिए उच्चकुल के ब्राह्मण लोग 'बिकाऊ प्रथा' का आधार लेकर निम्न स्तर के लडकी के साथ विवाह करके आजीवन ससुराल में रहने के लिए विवश होते है। अर्थात बिकाऊ–प्रथा पुरूष शोषण का उदाहरण है। 'रतिनाथ की चाची' में सोरठा बाजार और बिकाऔ प्रथा आदि अनोखी प्रथाओं की चर्चा की है। सामाजिकता की दृष्टि से यह हीन प्रथा लगती है।

वस्तुतः उपर्युक्त सभी उपन्यास आँचलिक उपन्यास कहे जाते है। इसीकारण इन उपन्यासकारों ने विशिष्ट अंचल को कथावस्तु के मध्य में रखकर ग्राम–जीवन चित्रित किया है। वह स्वाभाविक, यथार्थ, वास्तविक रूप में प्रस्तुत हुआ है ये सभी उपन्यास ग्रामजीवन की तसबीर ही है ऐसा मुझे लगता है।

<u>संदर्भ</u> :-

1. डा.गणपतीचन्द्र गुप्त – हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, पृ. 935

2. शंभूसिंह – रांगेय राघव और आँचलिक उपन्यास, पृ. 27

3. नागर्जुन – रतिनाथ चची, पृ. 117–118

4. वही, पृ. 65

5. बाबूराव गुप्त – उपन्यासकार नागार्जुन, पृ. 85

6. नागार्जुन – रतिनाथ की चाची, पृ. 21

7. वही, पृ. 54

8. वही, पृ. 100–101

9. डॅा.बालकृष्ण गुप्त – हिन्दी उपन्यास : सामाजिक संदर्भ, पृ. 9–10

10. नागार्जुन – रतिनाथ की चाची, पृ. 60–61

11. बाबूराम गुप्त – उपन्यासकार नागार्जुन, पृ. 70

12. नागार्जुन – रतिनाथ की चाची, पृ. 54

13. प्रा.अर्जुन जानू घरत – कथाकार नागार्जुन एवं बाबा बटेसरनाथ, पृ. 17

14. नागार्जुन – रतिनाथ की चाची, पृ. 68

15. वही, पृ. 54

16. वही, पृ. 94

17. डॅा.सुदेश बत्रा – हिन्दी उपन्यासों में नारी अस्मिता, पृ. 87

18. नागार्जुन – रतिनाथ की चाची, पृ. 100

19. डॅा.उमा गगराणी – उपन्यासकार रेणु तथा नागार्जुन के रचना संसार का तुलनात्मक अध्ययन, पृ. 73

20. डॅा.प्रेम भटनागर – हिन्दी उपन्यास शिल्प : बदलते परिप्रेक्ष्य, पृ. 73

21. नागार्जुन – बलचनमा, पृ. 51–52

22. वही, पृ. 128

23. बाबूराम गुप्त – उपन्यासकार नागार्जुन, पृ. 147

24. नागार्जुन – बलचनमा, पृ. 31

25. डॉ.सुमित्रा त्यागी – हिन्दी उपन्यास आधुनिक विचारधाराएँ, पृ. 178

26. नागार्जुन – बलचनमा, पृ. 43

27. वही, पृ. 70

28. बाबूराम गुप्त – उपन्यासकार नागार्जुन, पृ. 152

29. नागार्जुन – बलचनमा, पृ. 32

30. डॉ.उमा गगराणी – उपन्यासकार रेणु तथा नागार्जुन के रचना संसार का तुलनात्मक अध्ययन, पृ. 103–104

31. नागार्जुन – बलचनमा, पृ. 167

32. विवेकी राय – स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य और ग्राम जीवन, पृ. 242

33. डॉ.राधेश्याम कौशिक – स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास का शिल्प विकास, पृ.177–78

34. नागार्जुन – बलचनमा, पृ. 152

35. संपा. भीष्म साहनी, रामजी मिश्र, भगवती प्रसाद निदारिया – आधुनिक हिन्दी उपन्यास, पृ. 65

36. डॉ.बालकृष्ण गुप्त – हिन्दी उपन्यास : सामाजिक संदर्भ, पृ.106–107

37. शंभूसिंह – रांगेय राघव और आँचलिक उपन्यास, पृ. 40

38. भैरवप्रसाद गुप्त – गंगा मैया, पृ. 52

39. वही, पृ. 129

40. डॉ.बालकृष्ण गुप्त – हिन्दी उपन्यास : सामाजिक संदर्भ, पृ. 10

41. भैरवप्रसाद गुंप्त – गंगा मैया, पृ. 46

42. डॉ.सुदेश बत्रा – हिन्दी उपन्यासों में नारी अस्मिता, पृ. 18

43. डॉ.सुमित्रा त्यागी – हिन्दी उपन्यास आधुनिक विचारधाराएँ, पृ. 185

44. डॉ.सुरेंद्र प्रताप यादव – स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास में ग्रामीण यथार्थ और समाजवादी चेतना, पृ. 206

45. भैरवप्रसाद गुप्त – गंगा मैया, पृ. 29

46. वही, पृ. 37

47. वही, पृ. 89

48. डॉ.शशिभूषण सिंहल – हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ, पृ. 131

49. डॉ.जवाहर सिंह – हिन्दी के आँचलिक उपन्यासों की शिल्प विधि, पृ. 191

50 .नागार्जुन – बाबा बटेसरनाथ, पृ. 54

51. वही, पृ. 47

52. वही, पृ. 42

53. डॉ.जवाहर सिंह – हिन्दी के आँचलिक उपन्यासों की शिल्पविधी, पृ. 296

54. नांगार्जुन – बाबा बटेसरनाथ, पृ. 50

55. वही, पृ. 56

56. वही, पृ. 63–64

57. वही, पृ. 55

58. वही, पृ. 50–51

59. वही, पृ. 66

60. देवेश ठाकुर – मैला आँचल की रचना–प्रक्रिया, पृ. 69

61. नागार्जुन – बाबा बटेसरनाथ, पृ. 17

62. अजून घरत – कथाकार नागार्जुन एवं बाबा बटेसरनाथ, पृ. 119

63. नागार्जुन – बाब बटेसरनाथ, पृ. 31–32

64. पत्रिका – हंस, लेख – चर्चित–अचर्चित – देवेंद्र चौबे, पृ. 131

65. डॉ.सुरेंद्र प्रताप यादव – स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास में ग्रामीण यथार्थ और समाजवादी चेतना, पृ. 138

66. फणीश्वरनाथ "रेणु" – मैला आँचल, पृ. 135

67. वही, पृ. 96

68. वही, पृ. 124–125

69. संपा. सुषमा प्रियदर्शिनी – हिन्दी उपन्यास, पृ. 279–280

70. फणीश्वरनाथ "रेणु" – मैला आँचल, पृ. 16

71. वही, पृ. 54

72. वही, पृ. 198

73. वही, पृ. 111

74. वही, पृ. 62

75. फणीश्वरनाथ "रेणु" – मैला आँचल, पृ. 47

76. वही, पृ. 57

77. डॉ.जवाहर सिंह – हिन्दी के आँचलिक उपन्यासों की शिल्प–विधि, पृ. 220

78. नेमिचंद्र जैन – अधूरे साक्षात्कार, पृ. 34

79. फणीश्वरनाथ रेणु – मैला आँचल, पृ. 72

80. डॉ.उषा डोगरा – हिन्दी के आँचलिक उपन्यासें का लोकतात्विक विमर्श, पृ. 123

81. फणीश्वरनाथ रेणु – मैला आँचल, पृ. 63

82. डा.बंशीधर – हिन्दी के आँचलिक उपन्यास : सिध्दांत और समीक्षा, पृ. 93